सहजानंद शास्त्रमाला

पंचाध्यायी प्रवचन

भाग 6

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

पञ्चाध्यायी प्रवचन

[षष्ठ भाग]

●

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' जी महाराज

●

उक्तं सदिति यथा स्यादेकमनेकं सुसिद्धदृष्टान्तात् ।
अधुना तद्वाङ्मात्रं प्रमाणनयलक्षणं वक्ष्ये ॥ ५०३ ॥

प्रमाण और नयके स्वरूपके वर्णनका संकल्प—सत् कथञ्चित् एक है तो कथञ्चित् अनेक भी है। सत् कथञ्चित् नित्य है, कथञ्चित् अनित्य है आदिक परस्पर विरुद्ध दो धर्मोंके समन्वयके साथ स्याद्वाद पद्धतिसे अनेक प्रसिद्ध दृष्टान्तोंके द्वारा अनेकान्तात्मकताका यह मर्म बताया जा चुका है, वह सब नय बलसे सिद्ध होता था और सर्व नय बलसे जो वस्तु परिज्ञान किया गया वह परिज्ञान प्रमाणका रूप भी बनता था। तो इस तरह विवरण विश्लेषणमें नय और प्रमाणका उपयोग किया गया है। उस ही नय और प्रमाणके सम्बन्धमें अब यहाँ संक्षेपमें उसका लक्षण बतायेंगे। नय और प्रमाण ये दोनों ही ज्ञानके प्रकार हैं। सर्वरूपसे परिपूर्ण वस्तुका जानना है वह तो प्रमाण है और प्रमाणसे जाने हुए पदार्थमें किसी धर्मकी जानकारी की जा रही है उसको विशेषतासे समझा जा रहा है वह नय है। इस ही ढङ्गसे पूर्व प्रसङ्गोंमें नयका उपयोग किया गया है और उन नयोंसे जो वस्तु जाना गया है उसकी सर्वरूपसे परखनेपर प्रमाणका रूप बनता है तो उन विधियोंमें जो कुछ समझा गया है उन्हीं उपायोंको अब लक्षणात्मक ढङ्गसे बतला रहे हैं।

इत्युक्तलक्षणेऽस्मिन् विरुद्धधर्मद्वयात्मके तत्त्वे ।
तत्राप्यन्यतरस्य स्यादिह धर्मस्य वाचकश्च नयः ॥ ५०४ ॥

नयका स्वरूप— इससे पूर्व जो कुछ भी तत्त्वके स्वरूपका वर्णन किया है उस वर्णनमें यह स्पष्ट है कि तत्त्व विरुद्ध दो धर्म स्वरूप हैं जैसे सत् कथञ्चित् एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है वही सत् कथञ्चित् अनेक है तो जो एक है वह अनेक कैसे होगा ? जो अनेक है वह एक कैसे होगा ? ऐसा यद्यपि साधारणतया बिना विश्लेषणके विरुद्ध जच रहा है लेकिन ऐसे विरोधी दो धर्मों स्वरूप वह तत्त्व है. यह बात भली प्रकार बतला दी गई है। तो विरुद्ध दो धर्म स्वरूप तत्त्व हुआ करते हैं। तत्त्वके लक्षणमें भी इ पर प्रकाश डाला गया है कि तत्त्व विरुद्ध दो धर्मोंरूप होता है। उन धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मका प्रतिपादन करना अथवा किसी एक धर्मका परिचय लेना यह नय कहलाता है। जैसे जीव कथञ्चित् नित्य है कथञ्चित् अनित्य है। प्रत्येक पदार्थ परिणमन शील हुआ करता है। तो जब परिणमनकी प्रधानतासे निरखा जा रहा है तो जीव अनित्य सिद्ध होता है और जब मूल तत्त्व अस्तित्वको देखा जा रहा है तो जीव नित्य सिद्ध होता है। तो द्रव्य दृष्टिसे नित्य और पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। यों नित्या-नित्यात्मक जीव है यह परमार्थसे व्यवस्थित हुआ। अब उस व्यवस्थित जीवतत्त्वमें जीवकी अनित्यतापर विचार किया जा रहा हो, पर्यायकी प्रधानतासे जीव स्वरूपको निहारा जा रहा हो तो उस समय जीवके अनित्यत्वका जो विचार है, कथन है वह नय कहलायेगा इसी प्रकार जब द्रव्य दृष्टिसे जीवकी नित्यताका परिचय कराया जा रहा हो उस समय जो कुछ वहाँ नित्यत्वका परिचय चल रहा है वह नय है। तो अनन्त धर्मात्मक पदार्थमेंसे किसी एक धर्मका जो प्रतिपादन करे, परिज्ञान करे उसको नय कहते हैं। इस तरह नयका यह लक्षण बना कि विरुद्ध धर्म द्वयरूप तत्त्वमें किसी एक धर्मका प्रतिपादन करना परिचय करना, उसको नय कहते हैं।

द्रव्यनयो भावनयः स्यादिति भेदाद् द्विधा च सोऽपि यथा ।
पौद्गलिकः किल शब्दो द्रव्यं भावश्च चिदिति जीवगुणः ।५०५।

नयके प्रकार—वह नय दो प्रकारका होता है एक द्रव्यनय, दूसरा भावनय द्रव्यनयका अर्थ है कि अनन्तधर्मात्मक वस्तुमेंसे किसी एक धर्मका प्रतिपादन किया जा रहा हो तो वह सब शब्दात्मक पद्धति द्रव्यनय कहलाता है और वहाँ जो कुछ ज्ञानमें परिचय पाया जा रहा है, जिस एक धर्मका बोध किया जा रहा है उस दृष्टि को भावनय कहते हैं। तो जो पौद्गलिक शब्द है वह द्रव्यनय हुआ और जो जीवका गुणरूप चिद्भाव है ज्ञानविकल्प है वह भावनय कहलाता है। भावनय तो ज्ञानकी ही पर्याय है और द्रव्यनय उस शब्द पद्धतिका नाम है। इस तरह उस नयके स्वार्थ और परार्थ ये दो प्रकारके उपयोग होनेके कारण द्रव्यनय और भावनय ये दो भेद नयमें प्राप्त होते हैं। कोई ज्ञान केवल अपने लिए किया जाता है उसको स्वार्थ कहते हैं और जो दूसरोंको समझानेके लिए कहा जाता है उसको परार्थ कहते हैं। ज्ञानकी ५ परिणतियाँ होती हैं–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवल-ज्ञान। इन ५ ज्ञानोंमें श्रुतज्ञानको छोड़कर शेषके चार ज्ञान स्वार्थ ही होते हैं। उन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानोंसे जान लिया बस व्यवहार कुछ नहीं चला, किन्तु श्रुतज्ञान स्वार्थ और परार्थ दो प्रकारका होता है। श्रुतज्ञान स्वयं सविकल्प ज्ञान है और वहां ही समझानेकी पद्धति बनती है और ऐसे मन वाले पुरुष ही इस तरहके वचनोंसे वस्तु परिचय करानेकी चेष्टा करते हैं। तो जो दूसरेके लिए ज्ञान प्रयास है वह परार्थ श्रुतज्ञान है और जो स्वयंके समझने मात्रके लिए ज्ञान हो रहा है वह स्वार्थ ज्ञान है। परार्थ ज्ञानके प्रयासमें वचनोंका आलम्बन होता है यद्यपि उन वचनोंके संस्कारोंमें रहने वाले पुरुषको स्वार्थज्ञानके कालमें भी अन्तर्जल्प होता है लेकिन वह अन्तर्जल्प होकर रह जाता है, उसका व्यवहाररूप नहीं बनता। परार्थ श्रुतज्ञानमें वचनालापका प्रयोग चलता है। तो नयके उन दो भेदोंमें द्रव्यनय तो पौद्गलिक शब्द रूप है और भावनय चैतन्यकी परिणतिरूप है।

यदि वा ज्ञानविकल्पो नयो विकल्पोऽस्ति सोऽप्यपरमार्थः।
न यतो ज्ञानं गुण इति शुद्धं ज्ञेयं च किन्तु तद्योगात् ॥५०६॥

नयका स्पष्ट स्वरूप और उसकी अपरमार्थता– अथवा नयका यह लक्षण भी उपयुक्त है कि ज्ञानविकल्प को नय कहते हैं। इस नयके लक्षणमें भावनय की प्रधानतासे वर्णन किया है। अनन्त धर्मात्मक वस्तुमें किसी एक दृष्टिकी प्रधानता से जो एक धर्मकी समझ हुई वह समझ विकल्परूपसे उत्पन्न हुई है क्योंकि उस अखण्ड एक वस्तुमें भेद करना, खण्ड करना, एक धर्मका परिज्ञान करना यह कार्य विकल्पके बिना नहीं होता। अतएव वह ज्ञान विकल्प है, नय है सो वह परमार्थ नहीं है। यहाँ भेद और अभेदकी दृष्टिसे परमार्थ और अपरमार्थका विश्लेषण किया गया है। भेद दृष्टि करके एक धर्मके परिज्ञानका जो विकल्प हुआ है वह विकल्प परमार्थभूत नहीं है, इसका कारण यह है कि नय न तो शुद्ध ज्ञानगुणका नाम है और न शुद्ध ज्ञेयका नाम नय है। जो पदार्थ जाननेमें आया है वह पदार्थ नय तो नहीं कहलाता। नय तो हुआ यहाँ ज्ञाता पुरुषके अभिप्रायका नाम और वह अभिप्राय चूंकि विकल्पात्मक है, खण्ड रूप है अतएव उसे शुद्ध ज्ञान नहीं कह सकते हैं। तो तब यह नय, विकल्प न शुद्ध ज्ञान रहा, न शुद्ध ज्ञेय रहा, जो जाननेमें आ रहा वह भी ज्ञान नहीं, जो विकल्प बन रहा है वह भी ज्ञान नहीं है, वह ज्ञानका विकल्प है, ज्ञानस्वभावका खण्ड परिणमन है, वह ज्ञान स्वभाव नहीं, विशुद्ध ज्ञान नहीं है। अतएव नय न केवल ज्ञेय रहा न ज्ञान रहा किन्तु ज्ञान ज्ञेयके सम्बन्धमें जो विकल्प हो रहा है वह नय कहलायेगा। नयके सर्गमें ज्ञेयका तो आलम्बन है वह तो विषयभूत बन रहा है और यहाँ जाननेका विकल्प उठ रहा है सो वह ज्ञान विकल्पनय कहलाता है। इसी कारण नयको न प्रमाण कहा जा सकता है और न अप्रमाण कहा जा सकता है। वह तो प्रमाणका अंश है। ज्ञानका एक विकल्प है ऐसा वह ज्ञान विकल्परूप नय परमार्थभूत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है, यहाँ यह भी बात ध्वनित होती है कि जो परमार्थभूत नहीं हैं वह तो हेय ही हो सकता है। वस्तुत: देखा जाय तो विकल्पज्ञान सब हेय हैं अर्थात् ज्ञान विकल्पोंसे पार होकर एक निर्विकल्प अनुभवमें पहुंचना ही कल्याणमय परिस्थिति है। अतः जितने भी खण्डज्ञान हैं, वे सब हेय कहलायेंगे। यों यह ज्ञानविकल्परूप नय ज्ञान और ज्ञेयके सम्बन्धमें होने वाला विकल्प है और वह परमार्थभूत नहीं है।

ज्ञानविकल्पो नय इति तत्रेयं प्रक्रियापि संयोज्या।
ज्ञानं ज्ञानं न नयो नयोऽपि न ज्ञानमिह वि ॥५०७॥

स्याद्वादनीतिसे ज्ञान और नयमें अन्तरका प्रदर्शन - उक्त गाथामें यह बताया है कि ज्ञानविकल्पको नय कहते हैं। तो यहाँ प्रस्तुत बात यह हुई कि ज्ञान विकल्प नय है। अब इस सम्बन्धमें भी यही प्रक्रिया लगाई जा सकती है और लगाई जानी चाहिए कि ज्ञान ज्ञान है, नय नहीं है और नय भी नय है, ज्ञान नहीं है। स्याद्वाद नीति के अनुसार जिस तत्त्वको उपयोगके सम्मुख रखा जाया है वह तत्त्व तो स्वका रूप है और उससे भिन्न अन्य सब पररूप हैं। यहाँ बताया जा रहा कि ज्ञान का विकल्प नय है। तो इससे ही यह सिद्ध हो गया कि ज्ञानका स्वरूप अन्य है, विकल्पका स्वरूप अन्य है अन्यथा ज्ञान ही नय हो जाता, किन्तु ज्ञान ही नय नहीं है ज्ञानका विकल्प नय है और इस प्रक्रियासे यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान ज्ञान ही है, वह नय नहीं होता और नय नय ही है, वह ज्ञान नहीं होता। ज्ञान है अखुण्ड तत्त्व और ज्ञान विकल्प है खण्डरूप। अखण्ड और खण्ड ये दोनों प्रकट भिन्न भिन्न तत्त्व हैं। तो इस तरह ज्ञान विकल्प नय है इस लक्षणमें भी स्याद्वाद नीतिसे यह समझ लेना चाहिए कि जो ज्ञान है, शुद्ध ज्ञान है वह ज्ञान ज्ञान ही है, नय नहीं कहलाता। और जो नय है याने ज्ञानका विकल्प है भेद है, एक अंशका परिचय है वह ज्ञान नहीं है अर्थात् वह विशुद्ध ज्ञान नहीं है। यों स्याद्वाद नीतिसे यह समस्त स्वरूप गुम्फित है। नयज्ञान क्यों नहीं कहलाता ? यों नहीं कहलाता कि नय विकल्परूप है। ज्ञान, जो शुद्ध है स्वयं है, जो ज्ञानका विशुद्ध रूप है वह विकल्परूप नहीं है, यद्यपि ज्ञानका लक्षण विकल्परूप भी कहा गया है, किन्तु उस विकल्पका अर्थ मात्र प्रतिभास है, जानन है, और इस प्रसङ्गमें विकल्पका अर्थ अनन्त धर्मात्मक वस्तुमें भेद करके किसी अंशका ग्रहण करना है। तब यह अंश अंशी नहीं है अंशी अंश नहीं है, यद्यपि अंश अंशीका ही परिणमन है विकल्प ज्ञानका ही परिणमन है, परन्तु लक्षण वही कहलाता जिससे ठीक लक्ष्य पहिचाना जाय। तो उस लक्षण विधिसे निरखनेपर ज्ञान ज्ञान ही है नय नहीं है, नय नय ही है ज्ञान नहीं है।

उन्मज्जयि नयपक्षो भवति विकल्पो विवक्षितो हि यदा।
न विवक्षितो विकल्पः स्वयं निमज्जति तदा हि नयपक्षः ॥५०८

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नयपक्षके उदित और अस्तंगत होनेका आधार—ज्ञान विकल्पको नय कहते हैं इस लक्षणमें स्याद्वाद नीतिसे जो यह बात घटित की गई है कि ज्ञान ज्ञान ही है नय नहीं है नय नय ही है, ज्ञान नहीं है, इसका आशय यह है कि जिस समय विकल्प विवक्षित होता है अनन्त धर्मात्मक वस्तुमेंसे एक धर्मको जब कहा जा रहा है ऐसी उस विकल्प विवक्षाके समय, तो नयपक्ष उदित हो जाता है, किन्तु जिस समय वह विकल्प विवक्षित नहीं रहता उस समग्र वस्तुमेंसे एक धर्मको कहनेकी विवक्षा नहीं रहती, उस समय नय पक्ष अपने आप विलीन हो जाता है अर्थात् नयपक्षका जीवन विवक्षाके आधारपर है, अथवा विकल्पात्मक परिचयात्मक ज्ञानात्मक नयका जीवन दृष्टिके आधारपर है। कोई पुरुष नयका प्रयोग करे और योग्य दृष्टि न बनाये तब वह विपरीत हो जाता है। यही कारण है कि अनेक दर्शनोंने भी वस्तुके स्वरूपका ही वर्णन किया, अंशोंका वर्णन किया, किन्तु उसकी दृष्टि नहीं रखी कि किस दृष्टिमें यह अंश विदित होता है इस कारण वह एकान्त बना, और परीक्षा करनेपर असमीचीन हो गया है. यहां यह बताया जा रहा है कि ज्ञान ज्ञान ही है, नय नहीं है, इसका कारण क्या है ? शुद्ध ज्ञान तो विवक्षामें नहीं उदित होता। जब जब भी विवक्षा होगी तब तब नयपक्ष उदित होगा और वही विवक्षा जब अस्त हो जाती है तो उसके साथ ही नयपक्ष भी अस्त हो जाता है। जैसे जीव पर्याय दृष्टिसे अनित्य है, तो जीव की अनित्यता पर्यायकी विवक्षापर निर्भर हुई। जिस समय यह ज्ञाता पुरुष पर्याय दृष्टिका अस्त करदे, इसकी पर्याय दृष्टि न रहेगी तो वहाँ अनित्यपक्ष भी न रहेगा। इस प्रकार सभी जगह यह सिद्ध होगा कि जो भी नय उदित होता है वह विवक्षा अथवा दृष्टिके आधारपर उदित होता है। उस विवक्षा और दृष्टिकी समाप्ति होने पर नय भी समाप्त हो जाता है। इस तरह भी यह समर्थित होता है कि ज्ञान ज्ञान ही है नय नहीं है और नय नय ही है, ज्ञान नहीं है।

संदृष्टिः स्पष्टेयं स्यादुपचाराद्यथा घटज्ञानम्।
ज्ञानं ज्ञानं न घटो घटोऽपि न ज्ञानमस्ति स इति घटः ॥५०६॥

विकल्पात्मक ज्ञानकी ज्ञानरूपताके व्यवहारका दृष्टान्त द्वारा विवरण—ऊपर यह बताया गया है कि नय न तो शुद्ध ज्ञान गुण है और न शुद्ध ज्ञेय है। जब विकल्प विवक्षित होता है तब नयपक्ष प्रकट होता है और विकल्पके अस्त होनेपर नय पक्ष भी अस्त हो जाता है। तो वह नय जो कि द्रव्यनय, भावनयके भेदसे दो प्रकार का बताया गया है उसमें द्रव्यनय भी ज्ञानरूप नहीं है और भावनय भी ज्ञान गुणरूप नहीं है, फिर भी उन्हें ज्ञान कहना यह उपचार कथन है। इस विषयमें यह दृष्टान्त ठीक घटित होता है कि जैसे घट ज्ञान उपचारसे कहा जाता है. ज्ञान और घट ऐसे दो पदार्थ हैं। ज्ञान तो आत्माका धर्म है और घट एक पौद्गलिक पदार्थ है। ज्ञान अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आपमें स्वयं परिपूर्ण है, घट अपने आपमें परिपूर्ण है। ज्ञानमें घट नहीं घटमें ज्ञान नहीं, फिर भी घटको विषय करने वाले ज्ञानको घटज्ञान कहा जाता है। तो यहाँ वास्तवमें ज्ञान घटरूप नहीं हो जाता और न घट ज्ञानरूप बन जाता है। ज्ञान तो ज्ञान ही रहता है तथा घट घट ही रहता है। ज्ञानका स्वभाव जानना है, उसका आधार आत्मद्रव्य है। घटका स्वभाव रूपादिमय रहना है, उसका आधार वही पौद्गलिक पिण्ड है। तो घट और ज्ञान जैसे ये जुदे-जुदे स्वरूप वाले हैं फिर भी घटको विषय करने वाले ज्ञानको घटज्ञान कहा है, वह उपचार कथन है इसी प्रकार द्रव्यनय जो कि शब्दात्मक है उसको ज्ञानरूप कहना यह उपचारसे है, अथवा भावनय जो कि ज्ञानका एक खण्ड परिणमन है उसको ज्ञान कहना यह भी उपचारसे है इस तरह नय पक्ष परमार्थभूत नहीं है, किन्तु उसमें परमार्थभूतताका समावेश उपचारसे होता है।

इदमत्र तु तात्पर्यं हेयः सर्वो नयो विकल्पात्मा।
बलवानिव दुर्वारः प्रवर्तते किल तथापि बलात् ॥ ५१० ॥

नयोंकी विकल्पात्मता हेयता व दुर्वार प्रवृत्ति—नयके विषयमें यह तात्पर्य समझना कि जितने भी विकल्पात्मक नय हैं वे सभीके सभी हेय हैं। इस प्रसङ्गमें यह शङ्का होना स्वाभाविक है कि जब विकल्पात्मक ही नय होते हैं और वे सभी नय हेय होते हैं तब उनका वर्णन क्यों किया जाता है और उनका सहारा लेने को कहा भी क्यों जाता है? समाधान इसका यह है कि यद्यपि यह बात ठीक ही है कि विकल्पात्मक नय हेय है क्योंकि विकल्प एक खण्ड परिणमन है और वह परमार्थ भूत नहीं है, उस खण्ड रूपकी दृष्टि रखना भी हितकर नहीं है, अतः यह विकल्पात्मक नय हेयरूप है तो भी इस व्यवहारनयका कहना यों अनिवार्य है कि इसके प्रयोग बिना पदार्थ व्यवस्था जानी नहीं जा सकती। तब यह व्यवहारनय बलवानकी तरह दुर्निवार होकर प्रवर्तित हो जाता है। कोई दूसरा उपाय ही नहीं है कि उस परमार्थ तत्त्वको हम समझ सकें, और परमार्थकी समझ बिना यह संसारचक्र मिटता नहीं है। आत्माकी शुद्ध अवस्था नहीं प्रकट हो सकती तब यह व्यवहारनय बलवानकी तरह दुर्निवार होता हुआ प्रवर्तित होता है, अर्थात् इस व्यवहारनयका प्रयोग करना ही पड़ता है अन्यथा किसी भी उपायसे परमार्थ तत्त्वका बोध नहीं हो सकता। इस कारण व्यवहारनय यद्यपि उपचारसे प्ररूपित है और वह हेय है, विकल्प रूप है तो भी उसका कहना आवश्यक ही है। इसी कारण तो अध्यात्म सिद्धान्तमें बताया गया है कि व्यवहारनय परमार्थका प्रतिपादक है। दृष्टि तो परमार्थ स्वरूपकी रखना है, परमार्थता यही है कि यह आत्मा अखण्ड एक अभेद है, किन्तु ऐसे अखण्ड एक अभेद निजतत्त्वकी समझ गुणपर्यायका विस्तार किए बिना बन नहीं सकता इस कारण गुण पर्यायके वर्णनके भी रूपसे व्यवहार नयका आश्रय करना उचित ही प्रतीत होता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अथ तद्यथा तथा सत् सन्मात्रं मन्यमान इह कश्चित् ।
न विकल्पमतिक्रामति सदिति विकल्पस्य दुर्निवारत्वात् ।५११।

नयमात्रकी विकल्पात्मकताका उदाहरण पूर्वक स्पष्टीकरण– जितने भी नय हैं वे सभी विकल्पात्मक हैं इस बातको इस दृष्टान्तसे भी समझ सकते हैं। जैसे किसी पुरुषने सद्भूत वस्तुमें अन्य कोई विकल्प नहीं समझा किन्तु उसे सन्मात्र ही समझा हो, जैसे बहुतसे दार्शनिक हैं जो पदार्थका भेद विकल्प गुण पर्याय कुछ भी नहीं मानते किन्तु एक परमार्थ सन्मात्र ही है, ऐसा स्वीकार करते हैं तो भले ही उस सत्में कोई विकल्प न किए जा रहे हों, समर्थतासे नहीं किन्तु माने ही नहीं गए उस प्रकारकी दृष्टि ही नहीं पहुंच रही, वहाँ विकल्प तो अन्य अन्य रूप बहुत चल ही रहे हैं लेकिन जिस दर्शनमें केवल सन्मात्रका ही तत्त्व कहा गया हो तो वहाँ अन्य कोई विकल्प बताया ही नहीं गया ऐसे विकल्पको उठा भी नहीं रहे तो भी सन्मात्र है वस्तु, इस विकल्पसे तो दूर न हो सके यहाँपर भी वह ज्ञान विकल्पसे परे नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसके ज्ञानमें सत् ऐसा विकल्प तो आ ही चुका। तो विकल्प की प्रवृत्ति दुर्निवार है, यह सबको आता ही है, चाहे कोई किसी तरहका दर्शन बनाये विकल्प बनाये विकल्प आते ही हैं, और यह तो वस्तु स्वरूपके ज्ञानके अर्थ होने वाले विकल्पकी चर्चा है। अनेक अटपट विकल्प तो इस मोही जीवके चल ही रहे हैं, जो कुछ बुद्धिगत भी हैं, कुछ अबुद्धिगत भी हैं। तो यों विकल्पोंका होना दुर्निवार है। कोई केवल सत् ही तत्त्व माने तो वहाँपर भी सत् है इस विकल्पको तो वे ज्ञानसे बाहर नहीं कर सकते। दर्शन ही जिन्होंने ऐसा गढ़ा हो या जिनका दर्शन इस तरहसे गढ़ा हुआ है कि विकल्पजाल वहाँ है ही नहीं, भेद नहीं, परिणमन नहीं, केवल सन्मात्र तत्त्व है, तो सन्मात्र समझा यह ज्ञान भी विकल्पात्मक ही है, क्योंकि सत्त्व भी तो पदार्थका एक अंश है। उस पदार्थको किसी ढङ्गसे समझा ही तो है। तो यों जो कुछ यहाँ समझ बन रही है, विकल्प उठते हैं वे सब एक अंशरूप हैं। तो यों नय का आना सर्वत्र दुर्निवार है, वह रोकेसे भी रुकने की बात नहीं, सो विकल्प होते हैं, पर इतनी सावधानी रखनी चाहिए कि हमारे ये विकल्प इस तरहके हुए जो परमार्थ भूत स्वरूपकी ओर ले जायें। तो इस प्रसङ्गमें यह बात बतायी गई है कि वस्तु अखण्ड अवक्तव्य है परमार्थभूत है उसका वही स्वरूप है, पर उसको व्यवहारनयसे ही समझाया जा सकता है। यों व्यवहारनय विकल्पात्मक होनेपर भी अथवा किस ही प्रकारका कुछ भी नय हो विकल्पात्मक होनेपर भी उसका प्रयोग करना आवश्यक होता है, अतः प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः तो विकल्प सभी हेय हैं, विकल्पात्मक नय भी सभी हेय हैं।

स्थूलं वा सूक्ष्मं वा बाह्यान्तर्जल्पमात्रवर्णमयम् ।
ज्ञानं तन्मयमिति वा नयकल्पो वाग्विलासत्वात् ॥ ५१२ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थूल व सूक्ष्म सर्व वाग्विलासोंकी नयरूपता—चाहे कोई वचन स्थूल हो, चाहे सूक्ष्म हो, जैसे कि प्रकट बोलनेमें आया हुआ शब्द यह स्थूलजल्प है, इसको बाह्यजल्प कहते हैं और और ही वचन विकल्पकी योग्यता वाले पुरुषके ज्ञानके साथ ही जो मन ही मन तद्वाचक वचन उठ बैठते हैं वे अन्तर्जल्प कहलाते हैं। जो बाह्यजल्प अथवा अन्तर्जल्प जितने भी वचन हैं, वे सब वर्णमय हैं, इसी कारण वे नतरूप हैं। यद्यपि वचन पौद्गलिक चीज है उसे नय न कहा जाना चाहिए। नय तो ज्ञानका एक प्रकार है फिर भी विषय विषयीके विचारसे उन्हें नयरूप कहा गया है वे सब वचन विन्यासरूप हैं। यों जितने भी वचन विन्यासरूप सन्दर्भ है वचनात्मक कथन है वह सब नयात्मक है, इसी प्रकार उन वचनोंका जो बोध है वह भी नयस्वरूप ही है। वचनोंमें जैसे एक विवक्षित अंशपना है उसी प्रकार उन वचनोंसे विज्ञान जो वस्तु धर्म है उसमें भी एक विवक्षित अंशपना है, और जो अंशका बोध है वह सब नय स्वरूप है। यों जितने भी वचनात्मक प्रयोग हैं वे सब नय कहलाते हैं।

अवलोक्य वस्तुधर्मं प्रतिनियतं प्रतिविशिष्टमेकैकम् ।
संज्ञाकरणं यदि वा तद्वागुपचर्यते च नयः ॥ ५१३ ॥

वचनोंके नयत्वकी उपचारितता—अब अन्य प्रकारसे नयकी व्याख्या कर रहे हैं कि वस्तु धर्मको जो कि विवक्षित हो, प्रतिनियत हो अर्थात् किसी भी एक वस्तु धर्मको निरखकर अथवा उस वस्तु धर्मसे विशिष्ट पदार्थको देखकर या वस्तुसे विशिष्ट धर्मको निरखकर उस धर्मवाले वस्तुको उस ही नामसे कहना यह भी एक नय है यों अंश, धर्मके वाचक शब्दसे जो ज्ञान किया जाता है वह ज्ञान भी नयात्मक है। यदि शब्द निर्माण पद्धतिसे देखा जाय तो जितने भी शब्द हैं वे सभी शब्द विशेषण रूप हैं विशेष्यरूप कुछ भी शब्द नहीं है। तो जो सर्वथा अखण्ड एक वस्तुका ही प्रतिपादन कर सके ऐसा कोई वचन नहीं जो वजन द्रव्य पदार्थके वाचक हैं भी समग्र द्रव्यको संकेतसे कहते हैं। अर्थसे तो कोई धर्म ही कहा जाता है, जैसे ज्ञानी, ज्ञापक, आत्मा आदि किन्हीं भी शब्दोंसे कहा जाय तो वे शब्द उनका जो अर्थ है उस ही अर्थ को बताते हैं उस ही धर्मको बताते हैं। चैतन्य शब्द भी कहा तो चेतनसे चेतनारूप प्रतिभासनेका ही बोध किया गया। तो शब्द सभी वस्तुमें अंशके ही वाचक होते हैं। समस्त वस्तुका वाचक कोई शब्द नहीं होता। भले ही हम किसी वाचक शब्दसे समग्र वस्तुका बोध कर लें सो यह भी हमारी एक पद्धति है। जैसे ज्ञान शब्दसे हम ज्ञान गुणका बोध करते हैं, दर्शन शब्दसे दर्शन गुणका बोध करते हैं, पर ज्ञापक शब्द से ज्ञान दर्शन आदिक अनन्त धर्ममय आत्माका बोध करते हैं। सो हम संकेतसे भले ही उस अखण्डका बोध कर लें लेकिन ज्ञापक शब्द भी एक ज्ञान धर्मका ही समर्थन करता है। तो यों जगतमें जितने भी वचन हैं वे सब वचन नयात्मक हैं, अंशके ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कथन करने वाले हैं, तो किसी भी अंश धर्ममे वस्तुका नामकरण करना यह भी एक नयात्मक प्रयास है।

अथ तद्यथा यथाग्नेरौष्ण्यं धर्मं समक्षतोऽपेक्ष्य।
उष्णोऽग्निरिति वागिह तज्ज्ञानं वा नयोपचारः स्यात् ॥५१४॥

वचन और विकल्पोंमें नयत्वकी उपचरितताका दृष्टान्तपूर्वक वर्णन— उक्त प्रकरणको स्पष्ट करनेके लिए इस गाथामें एक दृष्टान्त दिया गया है कि जैसे अग्निका उष्ण धर्म देखकर कोई कहता है कि अग्नि उष्ण है तो अग्नि उष्ण है यह वचन नयरूप ही तो हुआ। उस अग्निमें केवल उष्णता ही हो सो बात नहीं है, उसमें उष्णता, प्रकाशन, पाचन, ज्वलन आदिक अनेक गुण हैं पर उस अग्निको एक उष्ण धर्मसे जब कहा गया है तो वहाँ अग्नि उष्णता मात्र समझी गई है। तो शब्द किसी अंशका ही बोध कराने वाला होता है और उस अंशसे हम भले ही उस वस्तु को समझें पर साक्षात् तो उस अंश मात्र वस्तुको समझा गया है। तो जैसे अग्नि उष्ण है, इन वचनोंके द्वारा एक उष्ण धर्मसे विशिष्ट ही अग्नि समझी गई है इसी प्रकार जीवको जब कहा कि जीव ज्ञानी है ज्ञायक है तो उस समय जीवमें अनेक गुण रहनेपर भी एक ज्ञानधर्मकी ही प्रतीति की गई है और वहाँ उस आत्मतत्त्वको, ज्ञानधर्मको विशिष्ट ही निरखा गया है। जब उन वचनोंके द्वारा केवल एक ही धर्म का बोध किया गया तो समझना चाहिए कि जितना भी वचन द्वारा कथन है और उससे उत्पन्न हुआ ज्ञान है सो सब नयरूप ही है। यों नयरूपता दुर्निवार होकर सभी जीवोंमें प्रवृत्त हो रही है। उस ही नयके बलपर हम आत्मतत्त्वके उस परमार्थभूत स्वरूपको समझ सकते हैं। यहाँ तक यह बताया गया है कि नय शब्द एक अंशके प्रकट करने वाले हैं, समग्र वस्तुको प्रकट नहीं करते। अतः वे सब विकल्पात्मक होने से, खण्डस्वरूप होनेसे हेय हैं परमार्थभूत नहीं हैं और वे सब नय शुद्ध ज्ञानगुणरूप नहीं, जिनका कि आश्रय करके सर्वसंकटहारी शुद्ध अनुभूतिको प्राप्त किया जा सके।

इह किल छिदानिदानं स्यादिह परशुः स्वतंत्र एव यथा।
न तथा नयः स्वतन्त्रो धर्मविशिष्टं करोति वस्तु बलात् ॥५२५॥

नयोंका पारतन्त्र्य—नयोंके प्रयोगमें अपेक्षाविशेषकी आवश्यकता होती है तथा प्रत्येक नय प्रतिपक्षनयकी सापेक्षता रखते हैं याने नय स्वतंत्र रीतिसे वस्तुको धर्मविशिष्ट नहीं बनाते हैं। जैसे कि काठके छेदनेकी क्रियामें कारणभूत कोई कुल्हाड़ी अपना काम करनेमें स्वतन्त्र है। भले ही प्रहार करने वालेने काठपर कुल्हाड़ीका प्रहार किया, यह अन्य सम्बन्धकी बात है। तो प्रहार हो जानेपर कुल्हाड़ी काठको छेद देती है। उस समय कुल्हाड़ी किसी अन्य अस्त्रकी प्रतीक्षा नहीं करती। तो वहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

छेदनक्रियाका कारणभूत कुल्हाड़ी छेदनकी क्रिया करनेमें स्वतंत्र है। अथवा जो छेद रहा है ऐसा पुरुष स्वतंत्र होकर छेदन क्रियाका कार्य कर रहा है। इस प्रकार नय स्वतन्त्ररूपसे वस्तुको धर्मविशिष्ट नहीं बनाता है कि वह अपने किसी बलप्रयोगसे जबरदस्ती वस्तुको धर्मयुक्त बनाये किन्तु प्रत्येक नय प्रतिपक्षनयकी अपेक्षा रखता है. याने यदि जिस नयसे जो कुछ समझा गया उसका ही एकान्त कर लिया गया तो वहां स्वरूप मिथ्या हो जाता है और उसके प्रतिपक्ष नयकी अपेक्षा रखे जानने वाला पुरुष उससे विरुद्ध धर्मको भी धारणामें रखे तो उसका नय प्रयोग सम्यक हो जाता है। इसका भावार्थ यह है कि जैसे कुल्हाड़ीके चलानेमें यह आवश्यक नहीं है कि वह किसी अन्य अस्त्रकी अपेक्षा रखे तब काष्ठ छेदन करे सो यहाँ तो स्वतन्त्रता है, लेकिन नय प्रयोगमें उस नयके द्वारा जो कुछ समझा गया है उसकी समझ नयके द्वारा स्वतंत्ररूप से न होगी। अगर केवल उस नयसे जो समझ आई उसको ही स्वतन्त्रतया मान लिया तो वह एकान्त बन जायगा। बिना किसी अपेक्षा विशेषके नयप्रयोग नहीं हो सकता। कोई दृष्टि लगानी होगी जिस दृष्टिकी अपेक्षासे नय अपने धर्मको बतला रहा है, यदि उस नय प्रयोगमें अपेक्षा विशेष नहीं लगाई जाती तो अर्थका अनर्थ भी हो सकता है, तब यह समीचीन साधना न बन सकेगी। इस कारण मानना चाहिए कि छेदन क्रियामें कुल्हाड़ीके समान स्वतन्त्र नय नहीं होता, किन्तु नय विवक्षाके कारण परतन्त्र है। अपेक्षा विशेष न रखे तो उसे नय नहीं कहते, किन्तु मिथ्या नय कहते हैं। इसी प्रकार प्रतिपक्षनयकी अपेक्षा न हो तो वह नय नय नहीं है किन्तु मिथ्या नय है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक नयका प्रयोग प्रतिपक्षी अन्य धर्मकी धारणा सहित ही होगा। जब वह समीचीन है और जिस अपेक्षासे उस नयका विषय बन रहा है उस ही अपेक्षामें वह प्रयोग होगा तब वह नय समीचीन कहलाता है।

एकः सर्वोऽपि नयो भवति विकल्पाविशेषतोऽपि नयात् ।
अपि च द्विविधः स यथा स्वविषयभेदे विकल्पद्वैविध्यात्।५१६

विकल्पात्मकताकी समानताके कारण सर्व नयोंकी एकरूपता व विषयभेदसे द्विविधा— इस प्रसङ्गमें नयका लक्षण बताया गया है कि ज्ञानविकल्प को नय कहते हैं। तो यह लक्षण सभी नयोंमें घटित होता है। कोई भी नय हो वह विकल्पात्मक ही होगा। तो विकल्पात्मकताकी समानता सब नयोंमें है, इस दृष्टिसे नय एक है। कितनी ही दृष्टि वाले नय हों, नय तो ज्ञानविकल्परूप है। ज्ञानविकल्पकी समानतासे नय एक ही किस्मका है। अब उसके आगे उन नयोंका विषयभेद जब निरखा जाता है कि नयोंने विषय किसको किया तब वहाँ द्वैविध्य बनता है। स्वतन्त्र दृष्टिसे तो ज्ञान विकल्पपना सबमें पाया जाता है अतएव नय एक है, किन्तु उन नयों के विषय क्या क्या हैं? इसपर जब दृष्टि देते हैं तो चूंकि अभिप्राय नाना होते हैं तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यों नय अनगिनते होसकते हैं किन्तु उन सभी नयोंको समानता और संग्रहसे संकोचा जाय तो नय दो प्रकारके होते हैं। जब विषयभेद है तो विकल्पभेद भी है। जब विकल्पभेद है तो नयभेद भी बना। इस तरहसे नय दो प्रकारोंमें विभक्त हो जाता है, जब नय अपने प्रतिपक्षनयकी अपेक्षा रखता है तो इतना तो सामान्यरूपसे ही जान लिया जाता है कि नय दो प्रकारके विषयोंको ग्रहण करता है। एक अपने अनुकूल दूसरा उसका जो प्रतिपक्षी नय है वह उस विषयसे पृथकको विषय करता है यों विषय भेदकी दुर्निवारताके कारण उनको समझाने वाले जो वाक्य हैं वे भी दो प्रकार के बनते हैं जिन्हें सामान्य ग्राहक और विशेष ग्राहक या द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक या भेदरूप व अभेदरूप, किन्ही भी शब्दोंसे कहो यों दो प्रकारके नय हो जाते हैं।

एको द्रव्यार्थिक इति पर्यायार्थिक इति द्वितीयः स्यात्।
सर्वेषां च नयानां मूलमिदं नयद्वयं यावत् ॥५१७॥

नयके मूलभेदरूप द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक नयका निर्देश नय दो प्रकारके हैं एक द्रव्यार्थिकनय और दूसरा पर्यायार्थिकनय। यद्यपि नय अनगिनते हो सकते हैं, क्योंकि विषयोंके प्रकार, विषयोंमें उपविषय अनेक होते हुए विषय अनेक बन जाते हैं। यों नय अनेक प्रकारके हैं किन्तु कितने भी नय हों, सम्पूर्ण नयोंके मूल-भूत विषय ये दो ही पाये जाते हैं। या तो वह नय भेदकी प्रधानतासे समझ रहा होगा अथवा अभेदकी प्रधानतासे समझ रहा होगा। तो जितने भी विषय हैं या तो भेदमें गर्भित होंगे या अभेदमें गर्भित होंगे। तो यों भेदको समझिये पर्याय और अभेद को समझिये द्रव्य। तो सभी नयोंके मूलभुत वे दो ही प्रकार हैं द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। कहीं संक्षेप और विस्तार ये दो विषय बन जाते हैं। तो वहाँपर भी जो संक्षेप है वह अभेद अथवा द्रव्यार्थिकनयमें शामिल है और जो विस्तार है वह भेद अथवा पर्यायार्थिकनयमें गर्भित होता है। विषयोंकी पद्धति मूलमें दो ही होनेके कारण नयोंके भेद मूलमें दो ही होते हैं, जिनका इस गाथामें वर्णन किया गया है। चूंकि द्रव्यार्थिकनय एक मूल वस्तुको जनाता है और द्रव्यार्थिकनयके विषयका आश्रय करने से शान्तिका मार्ग प्राप्त होता है मोक्षमार्गमें इस ही अभेदनयके अवलम्बनकी प्रशंसा की गई है, अतः प्रथम नम्बरमें द्रव्यार्थिकनयको गिनाया है और द्वितीय क्रममें पर्यायार्थिकनयको रखा है। यद्यपि व्यवहार अथवा पर्यायार्थिकनयकी कृपासे द्रव्यार्थिकनयका द्रव्यार्थिकनयके विषयका और परमार्थ तत्त्वका बोध होता है अतः प्रारम्भमें उपकारी है, पर अन्तमें अभेदका ही आश्रय योगीजन करते हैं जिसके बाद यह अभेदका आश्रय भी छुटता है और निर्विकल्प स्थिति बनती है। अतः यहाँ द्रव्यार्थिकनयको प्रथम और पर्यायार्थिकनयको द्वितीय कहा गया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्यं सन्मुखतया केवलमर्थः प्रयोजनं यस्य ।
भवति द्रव्यार्थिक इति नयः स्वधात्वर्थसंज्ञकश्चैकः ॥५१८॥

द्रव्यार्थिकनयका स्वरूप – इस गाथामें द्रव्यार्थिकनयके स्वरूपपर प्रकाश डाला है, केवल द्रव्य ही मुख्यतासे जिस नयका प्रयोजन है वह नय द्रव्यार्थिकनय कहा जाता है, द्रव्यका अर्थ है जिसने पर्यायें प्राप्त की, पर्यायें प्राप्त कर रहा है पर्यायें प्राप्त करेगा, ऐसी जो एक मूलभूत वस्तु है उसको द्रव्य कहते हैं । ऐसा द्रव्य, अनादि अनन्त अहेतुक अखण्ड पदार्थ जिस नयका विषय होता है उस नयको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं । पूर्व नीतिके अनुसार यहाँ भी यही प्रक्रिया लगाना चाहिए कि द्रव्यार्थिकनयमें द्रव्य दृष्टिकी विवक्षा है और साथ ही यह ज्ञाता जान रहा है कि केवल द्रव्यमात्र ही वस्तु नहीं है किन्तु वह पर्यायात्मक है । द्रव्यपर्यायात्मक पदार्थ है । और अब यहाँ उस पर्यायको गौण करके मुख्यतासे द्रव्य जाना जा रहा है तो जहाँ पर्यायको गौण रखकर मुख्यतासे द्रव्य कहा जाता हो अथवा उसका ज्ञान किया जाता हो उसे द्रव्यार्थिकनय कहते है । ऐसा द्रव्यार्थिकनय एक है । क्योंकि यहाँ भेद विवक्षा नहीं है । जहाँ भेद विवक्षा है वहाँ पर्यायार्थिकनयकी निष्पत्ति है । जहाँ भेदविवक्षा नहीं है वहाँ द्रव्यार्थिकनयकी निष्पत्ति है । तब यों समझिये कि विषय दो ही प्रकारके हैं भेद और अभेद तो जो अभेदको विषय करता है वह द्रव्यार्थिकनय है तथा जो भेदको विषय करता है उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं ।

अंशाः पर्याया इति तन्मध्ये यो विवक्षितोंशः सः ।
अर्थो यस्येति मतः पर्यायार्थिकनयस्त्वनेकश्च ॥५१९॥

पर्यायार्थिकनयका स्वरूप – अंश और पर्याय ये पर्यायवाची शब्द हैं, अंशों को ही पर्याय कहते हैं । उन अंशोंमेंसे जो अंश विवक्षित है वह अंश जिस नयका विषय है उसको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं । यद्यपि रूढ़िसे पर्याय परिणमनको ही कहते हैं । जो वस्तुकी समय-समयकी अवस्थायें हैं उनको पर्याय कहते हैं, पर यहां पर्यायके समकक्षमें अंश शब्द जो दिया गया है उस शब्दसे इस नयकी विशालताका भान हो जाता है । पर्यायार्थिकनय अंशको विषय करने वाला है । कभी ज्ञाताका अभिप्राय, द्रव्यकी शक्तियाँ और गुणोंपर जाय और एक एक शक्तिको ज्ञानमें ले, उनका विकल्प बनाये तो यद्यपि वे शक्तियाँ द्रव्यकी भाँति शाश्वत हैं लेकिन वे अंशरूप हैं । पर्याय भी नहीं हैं वे, परिणमन नहीं है, किन्तु उस द्रव्यके अंशरूप है । अतः उन अंशोंको ग्रहण करने वाला नय ही पर्यायार्थिकनय कहलाया । तो अंशोंका नाम भी पर्याय शब्दसे भी भेदको ग्रहण करना है । उन अंशोंमेंसे विवक्षित अंश जिस नयका विषय हो वह नय पर्यायार्थिकनय है । पर्यायार्थिकनय अनेक होते हैं, क्योंकि यह भेदरूप नय,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। भेद अनेक हुआ करते हैं। वस्तुमें अंश भी अनेक होते हैं इस कारणसे अन्शोंको जानने वाले ज्ञाननय भी अनेक हैं और उन अंशोंका प्रतिपादन करने वाले वाक्य भी द्रव्यनय भी अनेक हैं। इस तरह जितने भी नय हैं वे सब दो प्रकारके नयोंमें ही गर्भित होते हैं। वे मूलभेद हैं द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय।

अधुना रूपदर्शनं संदृष्टिपुरस्सरं द्वयोर्बंदये।
श्रुतपूर्वमिव सर्वं भवति च यद्वानुभूतपूर्वं तत् ॥ ५२० ॥

दोनों नयोंके स्वरूपके प्रतिपादनका संकल्प—ग्रन्थकार कहते हैं कि अब उन दोनों नयोंका स्वरूप दृष्टान्तपूर्वक कहेंगे। दृष्टान्तपूर्वक प्रस्तुत बात कहनेसे वह सम्बन्ध प्रसङ्ग इतना स्पष्ट हो जाता है कि जैसे मानो यह पहिले ही सुना हो अथवा बहुत अनुभव किया गया हो। दृष्टान्तका अर्थ है—जहां धर्म देखा गया है। दृष्टः अंतः यत्र स दृष्टान्तः। जिस बातको सिद्ध करना चाहते हैं वह धर्म जहाँ अन्य घटनाओंमें पाया जाय वह सब दृष्टान्त कहलाने लगता है। दृष्टान्तमें केवल उस धर्मकी ही तुलना की जाती है जिस धर्मको सिद्ध करनेके लिए दृष्टान्त दिया गया है। प्रस्तुत वस्तुके सभी धर्म दृष्टान्तमें नहीं आया करते। यदि सभी धर्म आ जायें तो वह दृष्टान्त पृथक ही क्यों रहेगा? वह दृष्टान्त भी न कहला सकेगा। तो दृष्टान्तपूर्वक कुछ भी तथ्यका प्रतिपादन करनेसे वह ऐसा स्पष्ट हो जाता है कि मानो उसको पहले समझा है, सुना है अथवा अनुभव किया है। यहाँ वर्णन किया जा रहा है द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नयका। तो द्रव्यार्थिकनय एवं पर्यायार्थिक नयके जो उदाहरण हो सकते हैं उन्हीं उदाहरणोंमेंसे कोई कोई उदाहरण लेकर इन नयोंका स्वरूप कहा जायगा, ऐसी यहाँ ग्रन्थकारने प्रतिज्ञा की है।

पर्यायार्थिकनय इति यदि वा व्यवहार एव नामेति।
एकार्थो यस्मादिह सर्वोऽप्युपचारमात्रः स्यात् ॥ ५२१ ॥

पर्यायार्थिकनय व व्यवहारनयकी अनर्थान्तरता—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयमेंसे उनके स्वरूप वर्णन करनेके प्रसङ्गमें पर्यायार्थिकनयका स्वरूप पहले कहा जा रहा है, इसका कारण यह है कि पर्यायार्थिक नय भेदको विषय करता है, इस कारण इसका स्वरूप समझ लेना सुगम है और पर्यायार्थिकनयोंके प्रयोगसे ही द्रव्यार्थिकनयके स्वरूप तक पहुंचना बनता है। इस कारण इन दोनों नयोंमेंसे प्रथम पर्यायार्थिकनयका स्वरूप कहा जा रहा है। पर्यायार्थिकनय और व्यवहारनय ये दोनों ही अनर्थान्तर हैं, इस कारणसे पर्यायार्थिकनय अथवा व्यवहारनय ये सब ही उपचार मात्र कहलाते हैं। पूर्वस्थलमें व्यवहारनयको उपचरित कहा गया है। और, व्यवहार-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नयको उपचरित कहनेका यह कारण बताया गया है कि व्यवहारनय पदार्थके यथार्थ रूपको नहीं कहता है। पदार्थ है अभेद अखण्डरूप जो कि परमार्थतः अवक्तव्य है। सो व्यवहारनय परम यथार्थ रूपसे तो कहनेमें समर्थ नहीं है किन्तु उस पदार्थके सम्बन्धमें कुछ भी प्रतिपादन करनेका जब प्रयास किया जाता है तो वहाँ अंशभेद करके ही उसका प्रतिपादन होता है। तो यहाँ प्रारम्भिक भी प्रतिपादन और अन्त तक भी प्रतिपादन जो हुआ है यह भेदीकरण व्यवहारके लिए किया गया है। तब जैसा व्यवहारसे बताया है परमार्थ दृष्टिसे वैसा पदार्थ नहीं है, क्योंकि पदार्थ तो अखण्ड एक रूप है। व्यवहारनयसे तो पदार्थके उस परमार्थ स्वरूपका प्रतिपादन न किया इस कारण यह उपचरित कहा गया है। व्यवहारनयका दूसरा नाम पर्यायार्थिकनय भी है। पर्यायार्थिकनय वस्तुके किसी अंशको ही तो विषय करता है, और व्यवहार भी अंशको भेदको विषय करता है, व्यवहरणं व्यवहारः। तो पर्यायार्थिकनयने भी भेद विषय किया है, सिद्ध किया है, इस कारणसे पर्यायार्थिक भी उपचार मात्र है। यहाँ इतना विशेष समझ लेना चाहिए कि व्यवहारनय तो अनेक ढङ्गसे हुआ करता है। जैसे अन्य वस्तुका अन्य वस्तुके साथ सम्बन्ध बताना अन्य वस्तुका प्रभाव अन्य वस्तुमें बताना किसी सम्बन्धके कारण अनेक प्रकारके विषय व्यवहारनयके बनते हैं अतः व्यवहारनयमें उपचारपनेकी बात बहुत स्पष्ट हो जाती है। किन्तु पर्यायार्थिकनय मूलतः अभेद वस्तुमें शक्ति परिणति आदिक अंशोंको करके प्रयोग करता है। तब इसमें उपचार मात्रता केवल इस नातेसे है कि चूंकि वस्तु है अभेदरूप, और यह कथन किया गया है भेद करके तो वस्तु भेदरूप नहीं है परमार्थसे और भेद किया गया है, इतना ही उपचारमात्रपना है, पर पर्यायार्थिकनयने उस ही वस्तुका गुण अथवा पर्याय को बताया है, इस कारण यथार्थ है यह।

व्यवहरणं व्यवहारः स्यादिति शब्दार्थतो न परमार्थः।
स यथा गुणगुणिनोरिह सदभेदे भेदकरणं स्यात् ॥५२२॥

व्यवहारनयका स्वरूप—व्यवहरण करनेसे अर्थात् किसी वस्तुमें भेद करने को व्यवहार कहते हैं। व्यवहारनय शब्द अर्थके आधारसे है अर्थात् वाक्य विवक्षाके आधारपर है, इसी कारण व्यवहारनय शब्दकी दृष्टिसे और अर्थकी दृष्टिसे दोनों ही प्रकारसे अपरमार्थ है। अर्थात् वास्तवमें व्यवहारनय वस्तुके यथार्थ स्वरूपको नहीं कहता है, इस कारण वह परमार्थभूत नहीं है। इसी बातको दृष्टान्तपूर्वक बतला रहे हैं कि देखिये! यद्यपि सत् अभिन्न है, उसके खण्ड नहीं होते सो अखण्ड होनेपर भी वहाँ जब प्रतिपादनका समझानेका प्रसङ्ग आता है तो और अधिक नहीं तो इतना भेद तो करता ही पड़ता है कि यह गुण है और यह गुणी है। यह सत् है, इसमें सत्त्व है, तो गुण गुणीका भेद करना इस नयका विषय है, पर उस वस्तुमें निरखा जाय तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या वहाँ गुण गुणीका भेद पड़ा हुआ है ? क्या वहाँ दो आधार हैं ? जैसे घड़ेमें चने भरे हुए हैं तो चनोंका स्वरूप चनोंमें है, घड़ेका स्वरूप घड़ेमें है, भिन्न सत्ता लिए हुए हैं और फिर उनका सम्बन्ध बताया है कि ये चने इस घडेमें हैं। इस प्रकारसे गुण गुणीकी स्थिति नहीं है। वहाँ तो वह सर्व एक ही है। उसको व्यवहारमें, प्रतिपादनमें लानेके लिए गुण गुणीका भेद किया गया है। तो चूंकि भेद नहीं है और भेद बताया है बस इतनी यहाँ अयथार्थता है पर इस दृष्टिसे देखा जाय कि ऐसा भेद करके भी वहां वस्तुको समझा गया है तब वह सत्य अर्थका ही प्रतिपादन करने वाला है। तो व्यवहारनय अखण्ड वस्तुमें भेद करता है इस कारणसे वह परमार्थ नहीं है।

साधारण गुण इति वा यदिवाऽसाधारणः सतस्तस्य।
भवति विवक्ष्यो हि यदा व्यवहारनयस्तदा श्रेयान् ॥५२३॥

गुणविवक्षामें व्यवहारनयकी श्रेयोरूपता— व्यवहारनयके द्वारा अखण्ड वस्तुमें गुणका भेद किया गया है, तो वह गुण चाहे सामान्य गुण हो अथवा असाधारण गुण हो जिस समय जो विवक्षित होता है उस समय उसे व्यवहारनयका यथार्थ विषय जानना चाहिए, अर्थात् विवक्षित गुण ही वहाँ गुण गुणीमें भेद सिद्ध करता है। यों यह व्यवहारनयका विषय है। इस व्यवहारनयने दो पदार्थोंको विषय नहीं किया या किसी पदार्थका किसी पदार्थमें प्रभाव उपचरित नहीं किया, किन्तु एक ही वस्तुमें जो कि सहज अखण्ड है उसमें भेद करके एक प्रतिबोधका मार्ग बताया है, इसी कारण व्यवहारनय प्रयोजनरहित नहीं है। समस्त धर्ममर्गका उत्तरदायी यह व्यवहारनयके प्रसादसे ही सर्व प्रतिबोध और प्रवृत्ति हुआ करती है, फिर भी अपरमार्थता इसकी यों कही गयी है कि वस्तु अपने मूल अस्तित्वमें भेदरूप नहीं है। भेदरूप न हुए वस्तुको भेदरूप बतानेके कारण इस व्यवहारनयको परमार्थ नहीं कहा गया। ऐसे प्रसङ्गमें ऐसी शङ्का होना प्राकृतिक है कि जब व्यवहारनय वस्तुमें भेद सिद्ध करता है और वस्तु भेदरूप है नहीं, सो जो व्यवहारनयका विषय है वह उसका यथार्थ स्वरूप नहीं है। तो जब व्यवहारनयने यथार्थ स्वरूपका प्रतिपादन नहीं किया तो व्यवहारनयका वर्णन ही क्यों किया जाता है ? क्योंकि इस स्थितिमें व्यवहारनयका मानना निष्फल है, क्योंकि वस्तु स्वरूपको तो व्यवहारनयने कहा नहीं, कहा और ही रूप। तो अन्य अन्य रूप कहा जानेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? ऐसी शंका होना एक स्वाभाविक है। इस शङ्काका निवारण करनेके लिए अब समाधान देते हैं।

फलमास्तिक्यमतिः स्यादनन्तधर्मैकधर्मिणस्तस्य।
गुणसद्भावे नियमाद् द्रव्यास्तित्वस्य सुप्रतीतत्वात् ॥ ५२४ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यवहारनयके प्रयोगका प्रयोजन व फल— व्यवहारनयका फल पदार्थोंमें आस्तिक्य बुद्धिका होता है। पदार्थ जैसे अभेद अखण्डरूप हैं उनकी समझ कैसे बने? पदार्थ है, यह बुद्धि भी कैसे आये? उन पदार्थोंका अस्तित्व समझाने वाला तो यह व्यवहार नय है। तो गुणभेद करके जो उनका असली स्वरूप है उस स्वरूपको बता करके पदार्थोंके अस्तित्वकी श्रद्धा कराता है। पदार्थ अभेद है, अनन्त गुणोंका पिण्ड है, यह सब बात व्यवहारनयके द्वारा ही समझमें आई है। व्यवहारनयसे वस्तु, अमुक प्रकारसे है यह बात जान जानेके कारण व्यवहारनयका बहुत बड़ा प्रयोजन सिद्ध होता है, इससे आस्तिक्यकी बुद्धि प्रकट होती है। जैसे एक जीवद्रव्यको ही ले लीजिए लोग इस जीवद्रव्यको किस तरह पहिचान पाते हैं? जब जीव द्रव्यकी कुछ कला, गुण, स्वरूप, स्वभाव कुछ भी बात दृष्टिमें लेते हैं तब ही तो जीव द्रव्यके स्वरूप तक पहुंच बनती है। तो कभी जीव द्रव्यके ज्ञानगुणको निरखा जाता है, कभी दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक गुण देखे जाते हैं, तो इन गुणोंकी विवक्षा होनेपर अथवा इन गुणोंका परिचयके माध्यमसे यह बात ध्यानमें आती है कि जीव ऐसे अनन्त गुणोंका पुञ्ज है। और, तब यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि ये सब जीव के ही खास गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, सम्यक्त्व आदि ये सभी जीवद्रव्य साधारण गुण हैं, यह भी तो व्यवहारनयके प्रयोगसे समझ पाया है। पदार्थोंमें सामान्य गुण है, विशेष गुण है आदिक विवरण किए बिना पदार्थका स्वरूप तो नहीं जाना जा सकता। तो व्यवहारनयसे पदार्थोंका स्वरूप समझा गया उनका अस्तित्व जाना गया अतएव आस्तिक्यबुद्धि उत्पन्न करनेका श्रेय व्यवहारनयको है। जब गुण गुणी सामान्य विशेष गुण आदिकका परिचय होता है तब पदार्थका अस्तित्व श्रद्धामें आता है। तो व्यवहारनयके माने बिना हितका मार्ग नहीं चल सकता है, आस्तिक्य बुद्धि जीवोंके नहीं बन पाती है। इस कारणसे व्यवहारनय प्रयोजनवान है, फिर भी व्यवहारनयको जो उपचरित कहा गया है वह केवल इस ही दृष्टिसे कि पदार्थ तो अभिन्न अखण्ड है और उसमें यह भेद दर्शाया जा रहा है फिर भी दिखाये गए भेदके द्वारा ही उस अखण्ड वस्तुको समझ पाते हैं। इस कारणसे व्यवहारनय प्रयोजनवान है और निश्चयनयकी अपेक्षा रखनेसे यथार्थ है, क्योंकि भेद करके भी प्रयोजन तो यही रहा कि अभेद वस्तुका परिज्ञान हो जाये। तो अभेद वस्तु निश्चय नयका विषय है। उसकी ओर पहुंचनेका व्यवहारनयका लक्ष्य है। अतएव यह व्यवहारनय यथार्थ है। यदि यह निरपेक्ष बन जाये, निश्चयनयके उद्देश्यकी बात न रखी जाये तो यह मिथ्या हो जाता है।

व्यवहारनयो द्वेधा सद्भूतस्त्वथ भवेदसद्भूतः।
सद्भूतस्तद्गुण इति व्यवहारस्तत्प्रवृत्तिमात्रत्वात्॥ ५२५॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यवहारनयके भेदोंमें सद्भूत व्यवहारनयका निर्देश—व्यवहारनयके दो प्रकार होते हैं एक सद्भूत व्यवहारनय दूसरा असद्भूत व्यवहारनय। सद्भूत का अर्थ है—सत्में होने वाले गुण अर्थात् वस्तुके गुणका नाम है सद्भूत और उनकी वृत्तिका नाम है व्यवहार अर्थात् पदार्थमें रहने वाले गुणोंका प्रतिपादन करना, परिज्ञान करना उसका नाम है सद्भूत व्यवहारनय। वस्तु स्वयं अपने आपमें एक निज अखण्ड रूप है। उस द्रव्यके गुण जानकर उसी द्रव्यमें बताना इस तरह उस द्रव्यमें गुणोंकी विवक्षा करनेपर जो गुणोंकी ख्याति की जाती है उसका नाम है सद्भूत व्यवहारनय। यह व्यवहारनय यथार्थ है क्योंकि इस नयने वस्तुके असाधारण गुणोंका विवेचन किया। जीवमें ज्ञान, दर्शन चारित्र सुख, श्रद्धा आदिक गुण हैं। इस प्रकारका जो एक अखण्ड आत्मामें गुणोंका प्रकाशन किया जिस उपायसे लोग उस आत्मस्वरूपको समझ सकेंगे इस उपायका नाम है सद्भूत व्यवहारनय, और, इस उपायके द्वारा अखण्ड वस्तुतत्त्वका प्रकाश मिला इस कारण यथार्थ है। पर यह सद्भूत व्यवहारनय यों कहलाता है अथवा इसमें उपचारपना इस कारणसे है कि यह अखण्ड वस्तुमें गुण गुणीका भेद करता है। वस्तुत: गुण गुणीसे भिन्न नहीं है फिर भी कथनमें जो गुण भेद आ रहा है उतने व्यवहारकी वजहसे इस व्यवहारको अयथार्थ कहते हैं। तो व्यवहारनयके इन दो प्रकारोंमें यह सद्भूत व्यवहारनय एक विशुद्ध व्यवहार है और यह यथार्थ वस्तुस्वरूपके निकटका व्यवहार है।

अत्र निदानं च यथा सदसाधारणगुणो विवक्ष्यः स्यात् ।
अविवक्षितोऽथवापि च सत्साधारणगुणो न चान्यतरात् ।५२६

सद्भूत व्यवहारनयकी प्रवृत्तिका निदान—सद्भूत व्यवहार नयकी प्रवृत्तिमें वस्तुके असाधारण गुणका प्रकाश हुआ है। इस कारण यह सद्भूत व्यवहारनय यथार्थ है और वस्तुस्वरूपके निकट पहुँचानेमें बलवान है। जैसे जीवमें ज्ञान गुण है, दर्शन गुण है आदिक व्यवहार तो सद्भूत व्यवहारनयसे हो रहे हैं ये असाधारण गुण ही बताये गए, साधारण गुणोंसे सद्भूत व्यवहारनय नहीं बनता क्योंकि साधारण गुण सबमें साधारण है उससे किसी विशिष्ट पदार्थकी प्रवृत्ति कैसे बन सकेगी ? तो पदार्थके असाधारण गुण ही इस नयके द्वारा विवक्षित किए गए इस कारण सद्भूत व्यवहारनय यथार्थ है और परमार्थ तत्त्वका प्रतिपादक है, इस नयमें साधारण गुण विवक्षित नहीं होते और ऐसा भी नहीं है कि इस नयके द्वारा कभी साधारण गुण विवक्षित होता, कभी कोई असाधारण गुण विवक्षित होता, किन्तु वस्तुकी अर्थक्रिया जिन गुणोंके सद्भावसे मानी गई है, जिससे कि पदार्थ अपनी कोई विशिष्ट अर्थक्रिया करदे उन गुणोंमेंसे किसी गुणकी विवक्षा की जाती है। तात्पर्य यह है कि सद्भूत व्यवहारनय साधारण गुणोंको गौण रखकर वस्तुके विशेष गुणों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का ही विवेचन करता है इस कारण आवान्तर सद्भूत, परमार्थ सद्भूत वस्तुके ही गुणोंका व्यवहार इस नयने किया, इसी कारण यह सद्भूत व्यवहारनय यथार्थ कहलाता है। यहाँ एक यह जिज्ञासा हो सकती है कि सद्भूत व्यवहारनयके प्रयोगसे कौन सा प्रयोजन इस साधकका सिद्ध होता है जिससे कि कोई साधक सद्भूत व्यवहारनयका प्रयोग करके आत्महितकी दिशा प्राप्त करे। उस ही प्रयोजनको अब अगली गाथामें बताते हैं।

अस्यावगमे फलमिति तदितरवस्तुनि निषेधबुद्धिः स्यात्।
इतरविभिन्नो नय इति भेदाभिव्यञ्जको न नयः ॥ ५२७ ॥

सद्भूतव्यवहारनयके ज्ञानका प्रभाव व फल— सद्भूत व्यवहारनय का विषय जाननेमें अथवा सद्भूत व्यवहारनयकी प्रक्रियामें यह फल प्राप्त होता है कि इतर वस्तुमें निषेध बुद्धि हो जाती है और यह व्यवहार भेदविज्ञानका प्रबल साधक हो जाता है। जैसे सद्भूत व्यवहारनयसे यह समझा कि जीवमें ज्ञान गुण है, दर्शन गुण है आदिक, तो इस अवगममें यह बात भरी हुई है कि जिसमें ज्ञान गुण नहीं, दर्शन गुण नहीं वह जीव नहीं है। तो इतर पदार्थोंसे विवक्षित पदार्थ जुदे ज्ञानमें आये, इसमें यह सद्भूत व्यवहारनय प्रबल साधक बन रहा है। तो सद्भूत व्यवहारनयकी समझका प्रयोजन यह है कि इस समझमें एक पदार्थमें दूसरे पदार्थके निषेधकी बुद्धि बन जाती है। विवक्षित पदार्थ अन्य किसी परपदार्थमें नहीं है और अन्य सर्वपर पदार्थ इस विवक्षित पदार्थमें नहीं हैं। एक पदार्थमें दूसरा पदार्थ बिल्कुल जुदा प्रतीत होने लगेगा, यह सब सद्भूत व्यवहारनयके प्रयोगका फल है. इसमें पदार्थोंकी विविक्तताकी प्रतीति हो जाती है। सम्यक्त्वके लिए जो एक प्रबल साधन है, वस्तु स्वरूप को परखकर अन्य वस्तुओंसे निज वस्तुको भिन्न समझ लेना इस प्रयोजनकी पुष्टि यह सद्भूत व्यवहारनय करा देता है। तो सद्भूत व्यवहारनय एकसे दूसरेको भिन्न जता देनेमें कारण है, पर एक ही पदार्थमें भिन्नताकी सूचना नहीं करता। सद्भूत व्यवहारनय वस्तुके विशेष गुणोंका ही तो विवेचन करता है। वस्तुमें जो स्वरूप पाया जा रहा है वह एक अखण्ड है, पर समझनेके लिए उसकी कलाका उसके परिणमनोंको जानकर उनकी शक्तियोंको बताया यही तो सद्भूत व्यवहारनयका अर्थ है। तो जब सद्भूत व्यवहारनयने किसी वस्तुके विशेषगुणोंका विवेचन किया तो उससे यह ज्ञात हो ही गया कि यह वस्तु अपने इन गुणोंमें तन्मय है और इन गुणोंसे विपरीत गुण वाले अन्य सर्व पदार्थोंसे भिन्न है। जैसे इस नयके द्वारा जब यह विवक्षित हुआ कि जीवका ज्ञान गुण है तो इससे यह भी तो सिद्ध हो गया कि इसमें अन्य जो पुद्गल आदिक द्रव्य हैं उनसे यह जीव भिन्न है, क्योंकि यहाँ ज्ञान गुण है, पुद्गल आदिकमें ज्ञानगुण नहीं है। तो इस तरह जो एक मुख्य प्रयोजन है, भेद विज्ञानकी साधना है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसकी सिद्धि इस सदभूत व्यवहारनयके प्रयोगसे हुई है।

अस्तमितसर्वसङ्करदोषं क्षतसर्वशून्यदोषं वा ।
अणुरिव वस्तुसमस्तं ज्ञानं भवतीत्यनन्यशरणमिदम् ॥ ५२८ ॥

सद्भूतव्यवहारनयकी तत्त्वदर्शकता—सदभूत व्यवहारनयसे यद्यपि जाना यह गया कि इस सत् वस्तुमें ये गुण हैं, लेकिन वहाँ उस वस्तुका यथार्थ ही तो परिज्ञान हुआ है और ऐसा पुष्ट परिज्ञान हुआ है कि जहाँ कोई संकर दोष नहीं आता। जैसे सदभूत व्यवहारनयसे जीवका ज्ञान गुण जाना तो यह ही तो वहाँ बात सिद्ध हुई कि ज्ञानगुणके रूपसे जीव सत् है, अन्य अर्थात् ज्ञानसे भिन्न रूपादिक अज्ञानभावकी दृष्टिसे असत् हैं। ज्ञानसे भी जीव सत् है और सत् रूप आदिक गुणोंसे भी सत् है, ऐसी संकरता सदभूत व्यवहारनयने दूर कर दी है। तो यह सदभूत व्यवहारनय उस परमार्थ तत्त्वके निकट ले जानेमें कितना प्रबल साधक है। इस तथ्यको प्रयोग करने वाले साधक स्वयं अनुभव कर लेते हैं। सदभूत व्यवहारनय संकर दोषसे रहित है। वस्तुके यथार्थ गुणकी दृष्टि कराता है और सदभूत व्यवहारनयके प्रसादसे ही शून्यता का निराकरण होता है। जीव है, ज्ञानमय है आदिक रूपसे जीवके अस्तित्वकी प्रतीति कराता है और नास्तिक अथवा शून्यताका निराकरण करता है यह सब सदभूत व्यवहारनयका प्रसाद है। इस नयके प्रसादसे सभी वस्तुयें अपने अपने उन गुणों मे तन्मय अखण्ड प्रतीत हो जाती हैं। सदभूत व्यवहारनयके द्वारा जब वस्तु अपने अपने विशेष गुणोंसे तन्मय अथवा युक्त जचने लगता है तो वहाँ संकर दोष नहीं आता। गुणोंका परिज्ञान तो होता ही है इस कारण शून्यता और अभावके दोष भी दूर हो जाते हैं। और सदभूत व्यवहारकी पद्धति ऐसी विशुद्ध पद्धति है कि जिससे कथनमें गुणोंका भेद आये लेकिन गुणोंको समझकर इस समझने वालेने गुणोंमें तन्मय वस्तुको समझा। इस तरह इस नयके ही प्रसादसे वह वस्तु अखण्ड भी प्रतीत हो जाती है। जब इसका इतना प्रताप है तो इसके बोधसे वस्तु तन्मय है, निज स्वरूप ही उसको शरण है, यह सब भान भी होने लगता है। यों निश्चय तत्त्वके प्रकाश करनेमें सदभूत व्यवहारनय अति निकटतम व्यवहार है।

अपि चाऽसद्भूतादिव्यवहारान्तो नयश्च भवति यथा ।
अन्यद्रव्यस्य गुणः सञ्जायन्ते बलात्तदन्यत्र ॥ ५२९ ॥

असद्भूतव्यवहारनयका स्वरूप—अब असदभूत व्यवहारनयका स्वरूप बताते हैं। असदभूत व्यवहारमें अ सत् भूत और व्यवहार ऐसे चार शब्द पडे हुए हैं, जिससे यह अर्थ निकलता है कि जो सत्में स्वयं अपने स्वरूपसे नहीं हैं ऐसी होनेवाली बातोंका उस सत्में प्रतिपादन करना तो असदभूत व्यवहार है। जिसका स्पष्ट अर्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह हुआ कि दूसरे द्रव्यके गुणोंका बलपूर्वक दूसरे द्रव्यमें संयोग करना, मिलाना, प्रतिपादन करना ऐसे आरोपभरे व्यवहारको असदभूत व्यवहारनय कहते हैं। असदभूत व्यवहारकी दो विधियाँ हैं एक तो यह कि परनिमित्तसे होने वाले भावोंको उस वस्तुके भाव बताना जिस वस्तुमें हुए हैं, एक तो यह प्रकार है इसमें असदभूतता यह पड़ी हुई है कि वह भाव उस वस्तुमें स्वरूपतः नहीं है, सहजसिद्ध भाव नहीं है, फिर भी उन परिणतियोंको उस वस्तुकी कहना यह असदभूत व्यवहार है। दूसरा प्रकार यह है कि जिस निमित्तसे विभाव उत्पन्न हुए हैं उस निमित्तमें रहने वाले गुणोंका भी उस दूसरे द्रव्यमें हुए भावोंमें निष्पत्ति बताना अर्थात् दूसरे द्रव्यके गुणों का बलपूर्वक दूसरे द्रव्यमें आरोप करना इसको असदभूत व्यवहारनय कहते हैं। असदभूत व्यवहारनयके लक्षणमें दोनों प्रकारकी विधियाँ आ जाती हैं। दूसरे द्रव्यका गुण जो आरोपित किया गया है वह गुण भी असदभूत है, उसके प्रतिपादनको असदभूत व्यवहारनय कहते हैं। इसी प्रकार दूसरे द्रव्यके निमित्तसे जो भाव हुए हैं वे विभाव उस परिणममान पदार्थ में सहज नहीं हुए हैं. वे मेरे स्वरूप नहीं हैं। स्वरूप न होकर भी उस वस्तुके बताये जारहे हैं, इस कारण वे भी असदभूत व्यवहार कहलाते हैं, अब इस असदभूत व्यवहारनयके दृष्टान्तमें दोनों ही विधियोंका समावेश करते हुए बताते हैं और ऐसा दृष्टान्त कहते हैं जिस दृष्टान्तमें अपने आपके सम्बन्धमें अनुभवपूर्ण शिक्षा प्राप्त हो। उस ही दृष्टान्तका अब ग्रन्थका वर्णन करते हैं।

स यथा वर्णादिमतो मूर्तद्रव्यस्य कर्म किल मूर्तम्।
तत्संयोगत्वादिह मूर्ताः क्रोधादयोपि जीपभवाः॥ ५३०॥

असद्भूतव्यवहारनयका उदाहरण—जिसमें रूप रस, गंध, स्पर्श होता है उसे वर्णादिमान कहते हैं। जो वर्णादिमान होता है उसको मूर्त कहते हैं। जैसे जगत में दिखने वाले ये पदार्थ मूर्त पुद्गल द्रव्य कहलाते हैं इसी प्रकार सूक्ष्म प्रकारके कारण स्कंध हैं वे भी वर्णादिमान हैं, अतएव मूर्त हैं। उन कार्माण वर्गणाओंमें जीवके विभावका निमित्त पाकर कर्मपना आ जाता है। यों उस मूर्त द्रव्य कार्माण स्कंधमें जो कर्मपना आया सो यह कर्म भी मूर्त कहलाता है। अब इस मूर्त कर्मके सम्बन्धसे अर्थात् इस मूर्त कर्म प्रकृतियोंका उदय आता है, उस उदयका निमित्त पाकर जीवमें क्रोधादिक भाव बनते हैं। तो चूंकि वर्णादिमान कर्मके उदयके सम्बन्धसे ये क्रोधादिक भाव बने अतएव इन क्रोधादिक भावोंको भी मूर्त कहना यह असदभूत व्यवहार है और इन क्रोधादिक भावोंको जीवके कहना यह भी असदभूत व्यवहार है। यहाँ असदभूत व्यवहारकी दो विधियाँ आयी हैं। क्रोधादिक भावोंको जीवके बताना यह भी असदभूत व्यवहार है क्योंकि ये क्रोधादिक भाव जीवमें सहजसिद्ध भाव नहीं हैं, जीवके स्वरूप नहीं हैं, फिर भी जीवके बताये जा रहे हैं। यह असदभूव व्यवहारपना है। अब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उन क्रोधादिक भावोंको मूर्त बना देना जीवके परिणमन होनेके कारण क्रोधादिक भाव मूर्त हैं नहीं, वे तो एक भाव हैं, रूप, रस गंध, स्पर्शसे रहित है लेकिन पुदगल संयोगसे कर्म प्रकृतिके उदयके निमित्तसे ये क्रोधादिक भाव हुए हैं। अतः इन्हें मूर्त कह देना यह भी असदभूत व्यवहार है। अनेक ग्रन्थकारोंने भी यह बताया है कि क्रोधादिक भाव शुद्ध आत्माके नहीं हैं किन्तु हुए हैं आत्मामें, अतएव अशुद्ध निश्चय-नयसे ये जीवके कहे जाते हैं। तो चू कि अशुद्धताका वर्णन है और अशुद्धता जीवका स्वरूप नहीं है अतएव यह असदभूत कहलाया। दूसरी दृष्टिसे ये क्रोधादिक भाव पुद-गल प्रकृतिके उदयके निमित्तसे हुए हैं और ये लोगोंको वर्णादिक रूपसे नहीं दिखते फिर भी व्यक्त रूपसे विदित हो जाते हैं। अतएव इनको भी मूर्तरूप कह देना यह असदभूत व्यवहार है।

कारणमन्तर्लीना द्रव्यस्य विभावभाव शक्तिः स्यात् ।
सा भवति सहजसिद्धा केवलमिह जीवपुद्गलयोः ॥५३१॥

असद्भूतव्यवहारनयकी प्रवृत्तिमें कारण अब इस गाथामें यह बतला रहे हैं कि ऐसे असदभूत व्यवहारनयकी प्रवृत्ति क्यों हुआ करती है? इस असदभूत व्यवहारनयकी प्रवृत्तिका कारण अन्तर्लीन द्रव्यकी विभावभाव शक्ति है। जीव और पुदगलमें वैभाविकी शक्ति होती है। और, विभावरूप परिणम सकना इस शक्तिका अर्थ है। जिस शक्तिके कारण जीव और पुदगल विभावरूप परिणम जाया करते हैं ऐसी शक्तिका नाम है वैभाविकी शक्ति। यह विभावकी शक्ति जीव और पुदगलमें क्यों आयी? अन्य द्रव्योंमें क्यों नहीं बसी हुई हैं, इसका उत्तर कुछ नहीं हो सकता। केवल एक स्वभाव ही उत्तर होगा। चाहे ऐसा प्रसङ्ग उठाकर भी कहा जाय कि चूंकि कर्मोदयका निमित्त पाकर जीवमें विरुद्ध परिणमन हो जाते हैं इस कारण वैभा-विकी शक्ति आयी है तो यह कारण ज्ञापक कारण होगा। कारक कारण नहीं है। वहाँ भी यह पूछा जा सकता कि कर्मके संयोगमें जीवमें ही क्यों विभाव परिणमन हुए? जहाँ कर्म हैं वहाँ छहों द्रव्य मौजूद हैं, फिर अन्य द्रव्योंको छोड़कर जीव ही विभावरूप क्यों परिणमता? तब अन्तमें यह उत्तर देना बनेगा कि ऐसा ही स्वभाव है। इसी प्रकार पुदगलमें भी प्रश्नोत्तर करके यही निर्णय कि पुदगलमें भी वैभाविकी शक्ति उसके स्वभावसे ही है। तब यह स्वीकार करना होगा कि जीव और पुदगलमें वैभावि की शक्ति स्वभावतः है। अथवा यों कह लीजिए कि जीवमें भावशक्ति तो है ही पर जीव विभावरूप भी परिणम जाता है। तो विभावरूप हो सकनेका सामर्थ्य बतानेके लिए उस भावशक्तिको ही विशेषित करके विभावशक्ति नामसे प्रसिद्ध किया गया है। तब यह तात्पर्य निकला कि अपने द्रव्यके स्वभावरूपसे परिणमनेमें तो विभावशक्तिका स्वभाव परिणमन कहलायगा और विभावरूप परिणमनेकी शक्तिमें विभाव परिणमन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहलायगा। तो जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंमें वैभाविकी शक्ति है और यह इन दोनों द्रव्योंमें स्वभावतः है। उस शक्तिका परनिमित्तसे वैभाविक परिणमन होता है। क्रोधादिक कषाय प्रकृतियोंके निमित्तसे जीवकी वैभाविकी शक्तिका क्रोधादिक वैभाविक परिणमन हो जाता है। जब पर निमित्त नहीं रहता तो उस ही शक्तिका स्वाभाविक परिणमन होता है। तो चूंकि उसको वैभाविक शक्तिके विभाव परिणमनसे ये क्रोधादिक भाव बने सो ये असदभूत व्यवहारनयके विषय हैं। तो यों असदभूत व्यवहारनय की प्रवृत्तिमें हेतु वैभाविकी शक्ति हुई है अब यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि असदभूत व्यवहारसे जो कुछ समझा अथवा समझाया गया इस प्रयासका शिक्षाप्रद फल क्या है ? उस फलको अब अगली गाथामें बताते है ।

फलमागन्तुकभावादुपाधिमात्रं विहाय यावदिह ।
शेषस्तच्छुद्धगुणः स्यादिति मत्वा सुदृष्टिरिह कश्चित् ॥५३२॥

असद्भूतव्यवहारनयका फल—उक्त गाथामें जो असद्भूत व्यवहारनयका उदाहरण दिया है उस उदाहरणसे यह स्पष्ट है कि जीवमें जो क्रोधादिक भाव आये हुए हैं वे आगन्तुक भाव हैं अर्थात् कर्मोदयका निमित्त पाकर आये हुए भाव हैं जीव में जीवके स्वभावसे ही, पर निमित्त बिना स्वयं स्वतः सहज आये हुए नहीं हैं तो ये क्रोधादिक भाव आगन्तुक हैं अर्थात् उपाधिका निमित्त पाकर उत्पन्न हुए हैं ऐसी समझ होनेके बाद जो समझ असद्भूत व्यवहारके प्रतापसे आई हुई है ऐसी समझ होनेके बाद जो समझ असद्भूत व्यवहारके प्रतापसे आई हुई है, ऐसी समझ कर लेने वाला कोई विवेकी पुरुष यह ही करेगा कि वहाँ उपाधिमात्रको छोड़कर निरखेगा कि फिर इस जीवकी क्या स्थिति होती है। ये क्रोधादिक भाव तो आगन्तुक भाव हैं, स्वाभाविक नहीं हैं। तो ये भाव जब न रहे अथवा उपाधि दूर हुई तो ऐसी स्थितिमें शेष क्या रहता है ? तो वह जीवका शुद्ध गुण रहता है। उस स्थितिमें जीवके ज्ञान दर्शन आदिक गुण स्वभावरूपसे परिणमने लगते हैं। तो जब दृष्टिमें यह बात समझी गई तब जीवके गुणोंमेंसे अब उस उपाधिको हटा दिया जो पर निमित्तसे हो रही थी, ये क्रोधादिक भाव उपाधि ही तो थे, तो उन उपाधिमात्रको दूर करनेसे अब चारित्र आदिक शुद्ध गुण प्रकट होते हैं, ऐसा प्रतीत होने लगता है और ऐसा समझकर अब इस विवेकीको जीवके स्वरूपकी पहिचान हो गई। तो उस स्वरूपको पहिचानकर कोई पुरुष सम्यग्दिष्टि हो सकता है। तो ऐसे सम्यग्दर्शनके आविर्भावकी पात्रता उत्पन्न करना इस असदभूत व्यवहारनयका कार्य है। असदभूत व्यवहानयका जो विषय है वह अंगीकार करने योग्य नहीं है। अतएव हेय है, किन्तु असदभूत व्यवहारनयसे जो परिचय प्राप्त होता है उस परिचयसे शिक्षा यह मिलती है कि उपाधिमात्र को छोड़कर जीवमें शुद्ध सहज भावका परिज्ञान करना है। इस दृष्टिसे असदभूत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यवहारनय भी बहुत उत्तम शिक्षा देने वाला नय है।

अत्रापि च संदृष्टिः परगुणयोगाच्च पाण्डुरः कनकः ।
हित्वा परगुणयोगं स एव शुद्धोऽनुभूयते कैश्चित् ॥ ५३३ ॥

असदभूतव्यवहारनयके फलका उदाहरणपूर्वक स्पष्टीकरण–असदभूत व्यवहारनय इस बातकी ओर संकेत देता है कि यह वर्तमान भव आगंतुक भावसे आया है और उपाधिमात्र है इसको छोड़कर जो कुछ शेष रहता है वह शुद्ध गुण रहता है। इस फलकी सिद्धि असदभूत व्यवहारनयके शुद्ध परिज्ञानसे होती है। इसी विषयमें यह दृष्टान्त दिया गया है कि जैसे सोना दूसरे पदार्थके गुणके सम्बन्धके कारण (चाँदीके सम्बन्धके कारण) कुछ सफेदीको लिए हुए पीला हो जाता है, हो गया पीला सफेदीको लिए हुए, किन्तु वह परिणमन आगंतुक भाव है। किसी दूसरे द्रव्यका मेल पाकर उत्पन्न हुआ है। यदि उस आगंतुक भावको दूर कर दिया जाय, जो इसका द्वितीय पदार्थ मिला है उस चाँदी अंशको दूर कर दिया जाय तो यही सोना जो कुछ शेष बचा है वह शुद्ध और कान्तिमान यथावत पीला हो जाता है। इसी प्रकार जो ऊपर दृष्टान्त दिया गया है कि वैभाविक गुण एक उपाधिमात्र है, वह कर्मोदयके सन्निधानमें हुआ है। यदि वह उपाधि दूर हो जाय या ऐसा विशिष्ट व्यवहार बनाया जाय कि वह उपाधि अनुभवमें न रहे तो ऐसी स्थितिमें ज्ञान स्वरूप अनुभवमें आ जाता है। जैसा कि आत्माका शुद्ध स्वभाव है, गुण है वही शेष रहकर अनुभवमें आता है। इस महान उपकारका श्रेय इस असदभूत व्यवहारनयका है। असदभूत व्यवहारनयका जो विषय है वह विषय तो हेय है, किन्तु असदभूत व्यवहार नयके परिज्ञानकी जो पद्धति है उस पद्धतिसे स्वभाव दृष्टिकी शिक्षा मिलती है। यों असदभूत व्यवहारनयका प्रयोजन शिवमार्गमें लगानेका है।

सद्भूतव्यवहारोऽनुपचरितोस्ति च तथोपचरितश्च ।
अपि चाऽसद्भूतः सोनुपचरितोस्ति च तथोपचरितश्च ॥५३४॥

सद्भूत व असद्भूत व्यवहारनयके प्रकार — अब व्यवहारनयके भेद जो ऊपर प्रसङ्गमें दो बताये गये हैं एक सदभूत व्यवहार, दूसरा असदभूत व्यवहार ये दोनों ही व्यवहार दो दो प्रकारके होते हैं। वे दो प्रकार हैं अनुपचरित और उपचरित अर्थात् अनुपचरित सदभूत व्यवहारनय और उपचरित सदभूत व्यवहारनयके भेदसे सदभूत व्यवहारनय दो प्रकारका है। इसी प्रकार अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय और उपचरित-असदभूत व्यवहारनयके भेदसे असदभूत व्यवहारनय दो प्रकारका है। इसमें उपचरितपना कैसे आया और कोई उपचरित कैसे हुआ करता है इस ? बातका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकाश जब इन दोनों प्रकारोंके स्वरूपका वर्णन होगा उसमें स्वयं स्पष्ट होता चला जायगा। फिर भी थोड़ा संक्षेपमें यह समझ लेना चाहिए कि किसी वस्तुका आलंबन करके परिज्ञान होगा तो वह उपचरित कहलायगा और जो अन्य वस्तुका आलम्बन बिना स्वयं ही बात होगी तो वह अनुपचरित कहलायगा। यह निस्पत्तिकी बात नहीं कह रहे हैं, किन्तु ज्ञप्तिकी बात कह रहे हैं। जिसका परिज्ञान किसी अन्य द्रव्यके आलम्बनसे होगा वह तो है उपचरित पद्धतिमें, जिसका परिज्ञान अन्य द्रव्यका आलम्बन किए बिना हो रहा हो वह है अनुपचरित पद्धति। इस तरह व्यवहारनय चार प्रकारका हो गया। एक अनुपचरित सदभूद व्यवहारनय, दूसरा उपचरित सद्भूत व्यवहारनय, तीसरा अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय और चौथा उपचरित असद्भूत व्यवहापनय। इन चार व्यवहारोंमेंसे प्रथम कहे गये उपचरित सद्‌भूत व्यवहारनयका स्वरूप बताते हैं।

स्यादादिमो यथान्तर्लीना या शक्तिरस्ति यस्य सतः।
तत्तत्सामान्यतया निरूप्यते चेद्विशेषनिरपेक्षम् ॥ ५३५ ॥

अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनयका स्वरूप जिस पदार्थके अन्दर जो शक्ति है जो शक्ति उस पदार्थमें अन्तर्लीन है उस शक्तिका जहां इस पद्धतिसे निरूपण होता है कि जहाँ किसी अन्य विशेषकी अपेक्षा नहीं होती, किन्तु सीधा सामान्यरूपसे निरूपित होता है तो इस पद्धतिको अनुपचरित सदभूत व्यवहारनय कहते हैं। सदभूत व्यवहारनयका अर्थ है कि सत् पदार्थमें जो स्वयं हो उसका व्यवहार करना सो सदभूत व्यवहार है। यही सदभूत व्यवहार जब किसी अन्य तथ्यका आलम्बन लिए बिना सीधे सामान्य पद्धतिमें होता है तब अनुपचरित सदभूत व्यवहारनय कहलाता है। यह व्यवहारनय परमार्थभूत तत्त्वके परिज्ञानके लिए निकटतम पद्धति है। इस सम्बन्धमें दृष्टान्त भी बतला रहे हैं।

इदमत्रोदाहरणं ज्ञानं जीवोपजीवि जीवगुणः।
ज्ञेयालम्बनकाले न तथा ज्ञेयोपजीवी स्यात् ॥ ५३६ ॥

अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनयका उदाहरण—जैसे यह प्रतिपादन किया गया कि ज्ञान गुण जीवका अनुजीवी गुण है। जीवमें शाश्वत अनादि अनन्त रहता है। यद्यपि जितने भी ज्ञान होते हैं वे ज्ञान जानते ही तो हैं उनमें बाह्य पदार्थ विषय होते हैं। तो यों कह सकते कि प्रत्येक ज्ञानमें विकल्प आकार ग्रहण प्रतिभासमान होता है। ऐसी स्थितिमें यह भी कहा जा सकता कि ज्ञानका प्रकाश ज्ञानके अवलम्बन सहित हो रहा है। यहां अवलम्बनका अर्थ परतन्त्रतारूप नहीं है, किन्तु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसी भी ज्ञानमें कोई बाह्य पदार्थ विषभूत होता ही है। यों ज्ञेयके अवलम्बनकाल में ज्ञेयका यह गुण ज्ञान न बन जायगा। ज्ञानगुण जीवका ही गुण है। भले ही देखने में ऐसा आता है कि ज्ञान इन दृश्यमान पदार्थोंसे प्रकट हो रहा है अथवा ये दृश्यमान पदार्थ न हों तो ज्ञानका यह रूप कैसे बने? यों ज्ञानका आलम्बन जच रहा है खण्डनाका लेकिन यह आलम्बन केवल विषय माना है। यहाँ जो ज्ञान बना वह ज्ञान जीवकी परिणतिमें बना। जीवका ही वह स्वभाव बना। यों ज्ञान बना, जीवका ही वह स्वरूप बना यों ज्ञान ज्ञेयका गुण न बनकर जीवका ही गुण है। किसी पदार्थको विषय करते समय यह न भूल जाना चाहिये कि ज्ञान जीवका अनुजीवी गुण है। तो इस पद्ध पद्धतिमें जब जीवका गुण ज्ञान बताया जा रहा है तो सीधा सामान्य पद्धतिसे ही कहा गया, और इस नीतिको कहें तो अनुपचरित सद्भूतव्यवहार नय सद्भूत व्यवहार तो यों बन गया कि परमार्थसे तो आत्मा अखण्ड पदार्थ है फिर भी उसमें गुणका भेद किया। अतः सद्भूत व्यवहारनय हुआ लेकिन यह भेद व्यवहार गुण गुणीका कथन सीधे बिना परके आलम्बनके किया गया है। यहाँ कोई आलम्बन की बात नहीं कही गई है। अतः इस पद्धतिको अनुपचरितसद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। इसी विषयको एक उदाहरणपूर्वक स्पष्ट किया है।

घटसद्भावे हि यथा घटनिरपेक्षं चिदेव जीवगुणः।
अस्ति घटाभावेपि च घटनिरपेक्षं चिदेव जीवगुणः॥ ५३७॥

अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयके उदाहरणका स्पष्टीकरण— जैसे किसी पुरुषने घटविषयक ज्ञान किया तो वह ज्ञान घटके सद्भावमें हुआ, क्योंकि घट को विषय कर रहा है, उस घट परिणमनमें घट समझा जा रहा है ऐसा घटाकार प्रतिभास होनेपर भी वह ज्ञान जीवका घट निरपेक्ष गुण है। जीवमें जो भी ज्ञान व्यक्त हुआ है वह घटकी अपेक्षा रखकर नहीं हुआ है। वह ज्ञान आत्माका उस समय का परिपूर्ण परिणमन है, उस ज्ञानका कर्ता, कर्म करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण ये सब इसमें गुणी हैं। ज्ञानको किसने किया? इस ज्ञानीने! इस ज्ञानीने अपने अभिन्न कर्मको ही किया। अपनी ही ज्ञान परिणति द्वारा किया, अपने ही जाननके लिए किया। और अपनी ही पूर्व पर्यायोंसे चलकर इस पर्यायरूपमें ज्ञान किया। और ये सब परिणति अपनेमें ही हुई। तो इस ज्ञानका स्वरूप प्रमाण इसी अन्य पदार्थसे या प्रस्तुत उदाहरणमें घटसे नहीं हुआ है। उसे यों समझिये कि घटका अभाव होता ऐसी स्थितिमें नया ज्ञान कुछ अपनी सत्ता ही न रखता होगा? तो जैसे घटके अभावमें यह ज्ञान जीवका घट निरपेक्ष गुण है इसी प्रकार घटके सद्भावमें भी यह ज्ञान जीवका घट निरपेक्ष गुण है। भले ही उस समय घट विषय ज्ञानमें आया है लेकिन उस समय भी घटाकार हुआ वह ज्ञान ज्ञान ही है। घटका कुछ भी अंश वहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है । घटको विषय कर लेने मात्रसे यह ज्ञान घट रूप नहीं हो जाता अथवा यह ज्ञान घटका गुण न बन जायगा । घटाकार होना तो इस ज्ञानका स्वभाव है और केवल घटाकार होता ही नहीं किन्तु जितने भी प्रमेय हैं सब हीका प्रतिभास होना वह ज्ञानका स्वरूप ही है । इस उदाहरणको स्पष्ट करनेके लिए एक दर्पणका भी दृष्टांत समझिये ! दर्पणमें सामने आये हुए पदार्थका प्रतिबिम्ब आ गया उस समय दर्पण उस पदार्थाकार हो गया । सभी लोग जानते हैं कि वह पदार्थ प्रतिबिम्बित है लेकिन दर्पणका उस रूप प्रतिबिम्बित हो जाना यह दर्पणका ही स्वभाव है दर्पणकी ही परिणति है । जैसे पदार्थका प्रतिबिम्ब पड़ा है, कहीं दर्पण उस पदार्थरूप नहीं हो जाता । तो जैसे दर्पण प्रतिबिम्बित होनेपर भी अपने ही स्वरूपमें है, कहीं प्रतिबिम्ब वाले पदार्थरूप नहीं बन गया । जैसे कि उसका प्रतिबिम्ब न होनेपर भी दर्पण अपने रूप है, यों ही समझिये कि जैसे पदार्थाकार होनेके समयमें दर्पणमें उस पदार्थका कोई गुण नहीं आया या दर्पणके कोई गुण उस पदार्थमें नहीं पहुंचे । इसी प्रकार ज्ञानमें कोई पदार्थ प्रतिभासित हो जाय, इतनेपर भी उस पदार्थरूप या उस पदार्थके गुणरूप यह ज्ञान नहीं बन जाता । ज्ञान तो अपने ज्ञानस्वरूप ही है । तो ज्ञान जीवका गुण है और वह अन्य निरपेक्ष है । इस पद्धतिसे समझा गया गुण गुणीका प्रकार अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनयका विषय है ।

एतेन निरस्तं यन्मतमेतत्सति घटे घटज्ञानम् ।
असति घटे न ज्ञानं न घटज्ञानं प्रमाणशून्यत्वात् ॥ ५३८ ॥

अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनयके परिज्ञानसे दुर्मतिका निराकरण— अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनयका जो दृष्टान्त दिया गया है कि ज्ञानगुण जीवका ही अनुजीवी गुण है । ज्ञेयका आलम्बन करके यद्यपि ज्ञानका विकास हो रहा है, ऐसी स्थितिमें भी वह ज्ञान घट निरपेक्ष जीव गुण है । इस उदाहरणमें यह बात व्यक्त की है कि घट पदार्थ विषयक ज्ञान भी हो रहा है, वहाँ भी वह ज्ञान जीवका गुण है । इस व्यवहारनयके विशुद्ध प्रयोगसे अनेक संताप दूर हो जाते हैं । जो लोग मानते हैं कि घटके होनेपर घटज्ञान होता है और घटके न होनेपर ज्ञान नहीं होता, यह ज्ञान घटसे ही उत्पन्न होता है और इस तरह वे ज्ञानको ही गुण सिद्ध कर देते हैं, ऐसा भ्रमपूर्ण सिद्धान्त स्वयं निराकृत हो जाता है तब अनुपचरितसद्भूत व्यवहारनयकी ज्योति विदित होती है । क्षणिकवादी लोग पदार्थ ज्ञानमें पदार्थको ही कारण कहते हैं । जो भी ज्ञान उत्पन्न होता है वह पदार्थसे ही उत्पन्न होता है, इसका प्रमाण भी यह उपस्थित करते हैं कि पदार्थसे यदि ज्ञान उत्पन्न न होता हो तो यह व्यवस्था कैसे बनाई जा सकती है कि यह ज्ञान घटका है, यह ज्ञान पटका है । इस ज्ञानने घटको ही जाना, यह व्यवस्था इसीसे ही बनती है कि जब वह ज्ञान घटसे उत्पन्न हुआ हो ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यों पदार्थसे ही ज्ञान उत्पन्न होता है और तभी यह व्यवस्था बनती है कि इस ज्ञान ने अमुक पदार्थको जाना इस ज्ञानने अमुकको जाना। यों पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति मानकर उस ज्ञानको पदार्थका ही गुण बताते हैं। परन्तु ऐसा सिद्धान्त सही नहीं हो सकता, क्योंकि घटज्ञानमें जो घटविषयक ज्ञान इस प्रकारका व्यवहार किया गया है वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयकी बात है। घटके कारण घटज्ञान नहीं हुआ, न घ से ज्ञानकी उत्पत्ति हुई। वह तो सद्भूतगुण है अर्थात् ज्ञानमय पदार्थमें स्वभावत: ऐसा गुण है कि अनेक पदार्थ विषयभूत होते जायें। ज्ञानका कारण पदार्थको माननेसे अनेक दूषण भी आते हैं। जैसे कहीं केशोंका पिण्ड पड़ा है अथवा कोई पुरुष अपना शरीर चादरसे ढके हुए सो रहा है केवल शिरका ऊपरी भाग खुला है तो ऐसी दशामें वह केशोंका पुञ्ज ऐसा विदित होता है जैसे वहाँ मच्छर मंडरा रहे हों। तो ज्ञान तो हो गया कि ये मच्छर हैं लेकिन मच्छर हैं कहाँ ? यदि परमार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती हो तो वहाँ कभी भ्रम न होना चाहिये। जो पदार्थ है उस पदार्थसे वैसा ही ज्ञान बनना चाहिये। फिर संशय, विपर्यय ज्ञान भी न बन सकेंगे। जब ज्ञानको जीव का गुण न मानकर ज्ञेय पदार्थका गुण मान लिया गया और यह स्वीकार कर लिया कि वह ज्ञान उस पदार्थसे उत्पन्न होता है तब तो प्रत्येक ज्ञान सही ही बोध करे। जो ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह उस हीको समझ लेवे फिर संशय, विपर्यय ज्ञान जो लोगोंको होते हैं वे कैसे हो सकेंगे ? जो पदार्थ ही नहीं है उसका ज्ञान हो जाय इसको विपर्यय ज्ञान कहते हैं। तो जब पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति मानी जाय तो विपर्यय ज्ञान होनेका अवकाश क्यों रहना चाहिए ? और भी सुनो ! जैसे दीपक पदार्थोंका प्रकाशक है, परन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि पदार्थोंसे दीपककी उत्पत्ति हुई है ? तो जैसे पदार्थोंसे उत्पन्न न होकर भी दीपक पदार्थोंका प्रकाशक है इसी प्रकार पदार्थोंसे उत्पन्न न होकर भी ज्ञान पदार्थोंका जानने वाला होता है।

पदार्थोंको सविभाग जाननेका कारण—पदार्थोंसे ज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा माननेमें क्षणिकवादियोंका यह न्याय दिखाया गया था कि पदार्थोंसे उत्पन्न होनेके कारण ही यह व्यवस्था बनती है कि ज्ञान घटको जान रहा, यह ज्ञान चौकीको जान रहा। जो चौकीसे उत्पन्न हुआ है ज्ञान वह चौकीका ज्ञान है, जो घटसे उत्पन्न हुआ है ज्ञान वह घटका है, यह युक्ति सही नहीं है, क्योंकि ज्ञान अमुकको ही जान रहा है, यह व्यवस्था ज्ञानकी योग्यतापर है। ज्ञानावरण जैसा क्षयोपशम है उसके अनुसार ही यह व्यवस्था बनती है कि यह ज्ञान अमुकको जान रहा है। ज्ञानावरण कर्म उसे कहते हैं जो ज्ञानको न होने दे। ज्ञान होता है ज्ञेय विषयक। जितने पदार्थों का ज्ञान होता है उतना ज्ञान न हो तो ज्ञानावरण भी उतना ही हो जाता है। जैसे घट ज्ञानावरण, पटज्ञानावरण, अनन्त ज्ञानावरण आदि। जिस जिस प्रकारके ज्ञाना-वरणका क्षयोपशम हो और उस ओर उपयोग हो, ऐसी स्थितिमें यह न्याय बनता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि यह ज्ञान इसके जानने वाला है। जिस जातिका क्षयोपशम होता है उस जातिका ही बोध होता है। यद्यपि यह बात भी है कि एक ही समयमें अनेक पदार्थ मौजूद हैं और अनेक पदार्थोंके ज्ञान विषयक क्षयोपशम भी है लेकिन केवल क्षयोपशमसे ही ज्ञान नहीं जगता, किन्तु वहाँ उपयोग भी चाहिए। लब्धि और उपयोग दोनोंके कारणसे क्षयोपशम ज्ञान पदार्थोंका ज्ञान करता है। तो उपयोग भी तभी कार्यकारी बनता है जब कि तद्विषयक क्षयोपशम हो। तो यों पदार्थ व्यवस्थाके क्षयोपशमरूप योग्यता ही उपादान कारण है। पदार्थोंसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है यह बात युक्ति विरुद्ध है। इस तरह अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयके दृष्टान्तसे यह स्पष्ट कर दिया गया कि ज्ञान जीवका अनुजीवी गुण है। यद्यपि वह ज्ञे को विषय करके बनता है फिर भी ज्ञेयके कारणसे ज्ञान नहीं है, और न वह ज्ञान ज्ञेयका गुण है, इस प्रकार ऐसे अनुपचरित सद्भूतकी बात बताना सो अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय है। अब यह बतलाते हैं कि अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयके प्रयोगके फल क्या प्राप्त होता है ?

फलमास्तिक्यनिदानं सद्द्रव्ये वास्तवप्रतीतिः स्यात् ।
भवति क्षणिकादिमते परमोपेक्षा यतो विनायासात् ॥५३९॥

अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयका फल—पदार्थमें प्रतीति उत्पन्न हो जाय बस यही अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयके प्रयोगका फल है। इस नयके प्रसादसे जीवमें आस्तिक्य बुद्धि उत्पन्न होती है, क्योंकि सद्भूत व्यवहारका अर्थ यह है कि पदार्थमें जो गुण मौजूद हो उसकी ही ख्यातिमें पदार्थको सम्बन्धित करना इसमें यह बात स्पष्ट होती है कि जिस पदार्थमें जो गुण है, जिसका जो स्वरूप है उस ही प्रकार उसका बोध करें तो उससे उस पदार्थके अस्तित्व विषयक श्रद्धा निर्मल हो जाती है। तो यों अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय आस्तिक्य भावका कारण बनता है जो कि जीवके लिए श्रेयस्कर है। दूसरा फल यह है कि जो पदार्थसे विरुद्ध ज्ञानका पोषण करते हैं ऐसे दर्शनोंसे स्वयं ही उपेक्षा बन जाती है। जैसे ज्ञानके विषयको क्षणिकवादियोंने माना कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होता है लेकिन जिस महापुरुषको सद्भूत व्यवहारकी नीति आ गयी, पदार्थमें जो गुण है उस गुणको उस ही पदार्थसे सम्बंधित करना ऐसी नीतिमें यह कुमत अपने आप दूर हो जाता है कि पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। यों अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनयके दो फल हैं। एक तो यह कि आस्तिक्य बुद्धि उत्पन्न होती है। जिस पदार्थमें जो गुण है बिना विचार किए उस गुणको उस ही पदार्थका देखना यह विशुद्ध आस्तिक्यका कारण है और इसके विरुद्ध जो प्रतिपादन है वह मिथ्या है। उनका निराकरण भी इस नीतिसे हो जाता है। घट ज्ञान की अवस्थामें भी ज्ञान जीवका ही गुण है, घटका गुण नहीं है। वहाँ विषय घट पड़ा है, तो घट ज्ञान अवस्थामें भी ज्ञानको जीवका ही गुण जानना यही तो अनुपचरित

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सद्भूत व्यवहारनय है। सो ऐसा ज्ञान पदार्थकी यथार्थ प्रतीतिका कारण है ही। अतः इसके प्रसादसे जीवोंमें आस्तिक्य बुद्धि दृढ़ हो जाती है कि यह इस नय का फल है।

उपचरितः सद्भूतो व्यवहारः स्यान्नयो यथा नाम ।
अविरुद्धं हेतुवशात्परतोप्युपचर्यते यथा स्वगुणः ॥५४०॥

उपचरित सद्भूत व्यवहारनयका स्वरूप—अब द्वितीय उपचरित सदभूत व्यवहारनयका स्वरूप बतला रहे हैं। जहाँ बात तो सदभूत ही कही जाय अर्थात् जिस पदार्थका जो गुण है वह उस पदार्थका ही बताया जाय, लेकिन किसी परका नाम लेकर उसका व्यवहार किया जाय तो उसे उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहते हैं। इस व्यवहारनयमें अविरुद्ध उपचारकी बात हुआ करती है। सही उपचार होता लेकिन वस्तुका गुण वस्तुके अस्तित्व पर ही जीवित है। किसी परके कारण नहीं है। ऐसे स्वतंत्र गुणको भी किसी पर पदार्थके सम्बन्धसे प्रतिपादित करनेकी नीतिको उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे घटज्ञान। तो यहाँ ज्ञानको जीवका गुण बताया जा रहा है। यह अंश तो सदभूत है और जीवका ज्ञान इस तरह गुण गुणी का भेद किया जा रहा है, यह व्यवहारका अंश है तथा वह गुण जीवमें घटका नाम लेकर उपचरित किया गया, यह अंश उपचरित अंश है। ऐसे ज्ञान वाले नयको उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहते हैं, अथवा ज्ञानका लक्षण इस विधिसे बताना कि जिसमें ज्ञेयका सम्बन्ध आये और उस ज्ञेयके सम्बन्धके कारण उसके लक्षणका बोध हो तो इस परिज्ञानको भी उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहते हैं। उपचरित सदभूत व्यवहारनय भी ज्ञाताको एक सुन्दर दिशाकी ओर ले जाता है। भले ही वहाँ परसे उपचार किया गया लेकिन जीवके गुणका जीवमें ही आरोप किया गया है। आरोप होता है भेदकी स्थितिमें। जीवका ही वह ज्ञान है लेकिन उस ज्ञानका जीवमें जब आरोप किया जाता है तो बुद्धिमें जीवका स्वरूप और ज्ञानका स्वरूप भिन्न भिन्न समझा गया है और जब ज्ञानका जीवमें आरोप किया जाता है पर का सम्बंध लेकर आरोप किया जाता है तब उसे उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहते हैं।

अर्थविकल्पो ज्ञानं प्रमाणमिति लक्ष्यतेधुनापि यथा ।
अर्थः स्वपरनिकायो भवति विकल्पस्तु चित्तदाकारम् ॥५४१॥

उपचरित सद्भूत व्यवहारनयका उदाहरण—उपचरित सदभूतव्यवहारनयका दृष्टान्त इस गाथामें बताया है उपचरित सदभूत व्यवहारका अर्थ है कि बात तो कहना ऐसी जो वस्तुमें पायी जाती है। उस ही वस्तुके गुणको उस ही वस्तुमें बताना यह सदभूत व्यवहार है, किन्तु किसी परका नाम लेकर उसका स्पष्टीकरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करना यह उपचरित है । दृष्टान्त बताया गया है कि जैसे प्रमाणका लक्षण जब यह कहा जाता कि अर्थ विकल्पस्वरूप ज्ञान प्रमाण है और उस ज्ञानका स्वरूप बताया है कि जो स्वपर व्यवसायी हो वह ज्ञान प्रमाण है । तो ज्ञानका स्वरूप ज्ञानके ही कारण अपने आपमें है । मेरा परसे कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी पर सम्बन्ध बताकर उसके लक्षणको स्पष्ट करना यह उपचरितपना है । अर्थ विकल्पको ज्ञान कहते हैं और अर्थका अर्थ है स्व और पर याने स्व और पर पदार्थका जो निश्चय करने वाला ज्ञान है वह प्रमाण है । ज्ञानकी बात बताये तो सही है, जितने भी ज्ञान होते हैं उनमें विषय स्व और पर होते हैं । लेकिन ज्ञानका जीवन, ज्ञानका अस्तित्व स्व और परके आधार पर नहीं है । ज्ञान स्वयं अपने आपमें प्रकट है फिर भी उसका बोध उपचार किए बिना नहीं हो सकता था अतः यह कहना पड़ा कि जो स्व परका निश्चय करे ऐसे ज्ञानको प्रमाण कहते हैं । ज्ञान परमार्थतः अपने स्वरूपको जानता हुआ ही पर पदार्थोंको जानता है । यह तो उसकी प्रमाणताका कारण है । क्यों है यह ज्ञान प्रमाण ? यों है कि वह अपने आपको जानता हुआ परको जानता है और इसी कारण यह विकल्पात्मक अवस्थासे वर्णन किया गया है कि जो स्व और पर पदार्थोंका निश्चय कराये ऐसे बोधको प्रमाण कहते हैं । तो ज्ञानका स्वरूप है तो अपने आप । ज्ञान जिस रूप परिणमन रहा है वह ज्ञानकी ही निज कला है और अपनी परिणति विशेषतासे परिणम रहा है । लेकिन यहाँपर ज्ञानका स्वरूप ज्ञानके विषयभूत पदार्थोंके आरोपसे किया जा रहा है । जो परका निश्चय करे वह ज्ञान प्रमाण है । इस तरह उपचरितपना तो आया लेकिन सद्भूतताका खण्डन नहीं हुआ । विकल्प रूप ज्ञानको जीवका ही गुण बताया गया है इस कारण यह उपचरित सद्भूत व्यवहारनयका विषय है । यदि ज्ञानकी उत्पत्ति परसे है ऐसा कहा जाता तो यह परका गुण कहलाता और यह नयाभास होता । नय जितने भी होते हैं वे विवक्षित निज वस्तुमें उस ही वस्तुके गुणका प्रतिपादन करते हैं । किसी परका किसी परके साथ स्वामित्व बताना कर्तृत्व बताना यह सब नय नहीं किन्तु नयाभास है । नय चूंकि प्रमाणका भेद है प्रमाणका अंश है और प्रमाण कहते हैं कि जैसा पदार्थ हो उस तरह जाने । तो जैसा पदार्थ है उस ही तरहसे उसके अंश जाने वह ही तो यह कहलायेगा । परका परके साथ मेल बताकर कहना यह नयकी बात न बनेगी । तो यहाँ उस ज्ञान को जीव का ही गुण कहा गया, यह तो है सदभूतपना परन्तु पर पदार्थके उपचारसे कहा गया यह उसका उपचरितपना है । इसी बातको और भी स्पष्ट कहते हैं ।

असदपि लक्षणमेतत्सन्मात्रत्वे सुनिर्विकल्पत्वात् ।
तदपि न बिनावलम्बान्निर्विषयं शक्यते वस्तुम् ॥ ५४२ ॥

उपचरित सद्भूतव्यवहारनयके उदाहरणमें उपचरित सद्भूतव्यव-

http://sahjanandvarnishastra.org/

हार्पने का परिचय—उक्त गाथामें जो दृष्टान्त दिया गया है उसमें उपचरित सद्भूत व्यवहारनयकी बात किस तरह घटित होती है इसका स्पष्टीकरण इस गाथा में है। ज्ञान तो ज्ञानरूप है वह अपने आपमें निर्विकल्प है और इस कारणसे जो वह है उस ही प्रकार सन्मात्र है। उसका जो यह लक्षण बताया गया है कि अर्थ विकल्प ज्ञान कहलाता है। यह विकल्प स्वरूप लक्षण उस ज्ञानमें परमार्थत: नहीं है, फिर भी यदि परका अवलम्बन नहीं लेते तो इस तरह निर्विषय होनेपर उस ज्ञानरूपका कथन नहीं किया जा सकता था, इस कारण इस उपचरित सद्भूत व्यवहारका आश्रय लेना पड़ा है। ज्ञान है उसमें जो परिणमन होता है, हो रहा है, अब क्या हो रहा, इस बातको उसके विषयभूतका नाम लेकर ही बताया जा सकता है और किसी भी पर पदार्थका नाम लेकर अन्य वस्तुको गुण बताना यह उपचरितपना है। तो अर्थविकल्प को ज्ञान कहते हैं। इसमें इतना उपचरितपना आया है फिर भी इस ज्ञाताकी दृष्टिमें यह बात समाई हुई है कि ज्ञान तो जीवका गुण है। जिस पदार्थको जान रहा है उस पदार्थका गुण नहीं है, इस तरह परमार्थ तत्त्वकी अपेक्षा रखनेपर ही इसमें प्रमाणता आती है। तो निर्विषय होकर कहा जाना अशक्य था इस कारण उपचरितपनेकी बात उपकारके लिए की गई है। कैसे जगतमें तीर्थ प्रवृत्ति हो ? लोगोंको कैसे इस अंतस्तत्त्वका बोध हो ? इसके प्रयासमें उपचरित सद्भूत व्यवहारनयका भी प्रयोग करना होता है। फिर भी इस तथ्यसे अलग न होना चाहिए कि यदि वह निश्चयनयको निरपेक्ष होता है अथवा उपचरित सद्भूत व्यवहारनयको जो कहा है केवल इतना ही बोधमें रहता है। निश्चयनयके विषयभूत तत्त्वकी श्रद्धा नहीं है तो यह नय मिथ्या हो जायगा। तो सद्भूतपना रहे इस तरहसे उपचरितपना किया गया है। अत: उपचरित सद्भूत व्यवहारनय उक्त दृष्टान्तके अर्थ विकल्पको ज्ञान कहते हैं और ऐसा प्रमाण है यह इस नयकी दृष्टिमें संगत ही है।

तस्मादनन्यशरणं सदपि ज्ञानं स्वरूपसिद्धत्वात् ।
उपचरितं हेतुवशात् तदिह ज्ञानं तदन्यशरणमिव ॥५४३॥

अनन्यशरण तत्त्वमें कारणवश अन्यशरणत्वकी प्रतीति इस दृष्टान्त में प्रस्तुत नयकी क्या बात सिद्ध की गई है ? यहाँ यह बात सिद्ध की गई है कि ज्ञान अपने स्वरूपसे स्वयं सिद्ध है, अर्थात् ज्ञान अनन्य शरण है। वह किसी पर पदार्थका शरण लेकर जीवित नहीं है। ज्ञान स्वरूपसे स्वयं ही जगमगा रहा है वह अपना काम किए बिना रहता नहीं है अब स्वयं ही प्रकाशमान इस जीवके उस ज्ञान प्रकाश को किस तरह समझाया जाय जगतको उसमें पर पदार्थका उपचार लेना पड़ रहा है। तो यह स्वरूप है यद्यपि अनन्य शरण अर्थात् ज्ञानका ज्ञान ही शरण है। ज्ञान स्वयं अपने शरणसे, अपने अस्तित्वसे, अपने ही कालसे उदित हुआ है फिर भी पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थ विषय हो रहे हैं तो उन विषयोंके उपचारसे उन हेतुवोंके कारणसे यह ज्ञान अन्य शरणके समान उपचरित हो रहा है। ज्ञाताकी दृष्टिमें और कथन करते हुए आचार्य महाराजकी दृष्टिमें कितने खेदके साथ यह बात स्पष्ट कही जा रही है कि देखिये ज्ञान तो अनन्य शरण ही है, क्योंकि वह स्वतंत्र है, अपने अस्तित्वसे है, अपने ही रूपसे परिणम रहा हैं। इस तरह ज्ञान अनन्य शरण है। खुद ही खुदके लिए शरण है, लेकिन यहाँ प्रतिपादनके प्रसङ्गमें, दूसरोंको प्रतिबोध करनेके प्रसङ्गमें, विषय का उपचार करके जो लक्षण बनाया गया है, ऐसा यह अन्य शरणकी तरह प्रतीत हो रहा है कि मानो यह ग्यान इनपर पदार्थोंकी शरणमें हो और उस शरणसे अपना जीवन रख रहे हों। इस प्रकार अन्य शरणके समान प्रतीत होनेको ही तो उपचरित-पना कहते हैं। उपचरितमें यही बात आती है कि जैसे मानो लग रहा हो कि दूसरे के शरणपर ही इनका अस्तित्व है। पर ऐसा है नहीं। पर कथनमें जो उपचार किया गया है उस उपचारसे कुछ यह ढंग सा बना है लेकिन ग्याता ऐसा लक्षण करने करने सुननेके बाद भी यह नहीं समझ रहा है कि ग्यान अन्य शरण बन गया। इन पदार्थोंके एहसानसे ही अपना जीवन रख रहा ग्यान अपने स्वरूपसे प्रकाशमान है, परन्तु इसके प्रतिपादनमें परका उपचार किया गया है जिससे अन्य शरणकी भाँति प्रतीत होता है।

हेतुः स्वरूपसिद्धिं विना न परसिद्धिरप्रमाणत्वात्।
तदपि च शक्तिविशेषाद्द्रव्यविशेषे यथाप्रमाणं स्यात् ।५४४।

उपचरित सद्भूत व्यवहारनयकी प्रवृत्तिमें हेतु—उपचरित सद्भूतव्यवहारनयका जो उदाहरण दिया गया है और उसमें उसके स्वरूपकी विवेचना भी की गई है। यहाँ यह बताया गया है कि प्रस्तुत विषय अनन्य शरण होकर भी उपचारकी वजहसे अन्य शरण जैसा प्रतीत होता है। ऐसा होनेमें कारण क्या है ? इसका वर्णन इस गाथामें किया गया है। यहाँ स्वरूपसिद्धिके बिना परसे सिद्धि मानी जाय, तो वह अप्रमाण ही है। अर्थविकल्प ज्ञान है, ऐसा लक्षण तो किया गया है परन्तु ज्ञान स्वरूपसे सिद्ध है और जब स्वरूपसे सिद्ध है तभी वह परसे भी सिद्ध माना जा सकता है अर्थात् उसमें परका उपचार करके भी स्वरूप विवरणका व्यवहार किया जा सकता है। ग्यान स्वरूपसे सिद्ध है और वह जीव द्रव्यका गुण विशेष है। यह बात भले प्रकार प्रमाणित है। भले ही परपदार्थका बोध प्रमाणित है, ऐसा कहनेमें ग्यानमें प्रमाणता परसे लगायी गई है और उसका निर्णय भी परकी और दृष्टि बनाकर विश्लेषण करके किया जाता है। जैसे सीपको सीप जाना तो वहाँ प्रमाणता इस द्वार से लायी जाती है कि वहाँ सीप ही है, जैसे कि जाना इस कारण यह ग्यान प्रमाण है। लेकिन क्या ग्यानका स्वरूप, ग्यानका प्रमाणत्व क्या पर पदार्थके कारण हुआ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करना है लेकिन प्रमाणपनेका फल क्या घटित करता है और उससे किस मार्गका संकरण करना है यह बात पर पदार्थोंके निर्णयके कारण हुआ करती है। इस कारण परके उपचारसे ज्ञानमें प्रमाणता बताया है फिर भी यहां यह निरखना चाहिए कि पर पदार्थसे प्रमाणता ज्ञानमें तभी आ सकती है जब वह ज्ञान अपने स्वरूपसे सिद्ध हो। बस इन ही दोनों बातोंका समन्वय और प्रतिबोध इस उपचरित सद्भूत व्यवहार नयसे होता है। जिसमें यह निर्णय किया गया है कि ज्ञान जीव द्रव्यका विशेष गुण है और वह स्वयं सिद्ध होकर भी परसे उपचार किया जाता है। उपचारकी बात केवल ज्ञायक पक्षमें हुआ करती है कारक पक्षमें तो जैसा जो कुछ होता है अपने उपादान की योग्यतासे अथवा साथ ही परका निमित्त पाकर जैसा जो कुछ होता है, उसमें उपचारकी बात नहीं होती। उपचार तो केवल ज्ञायक पक्षमें है, समझना समझना यह होता है परका उपचार करके। तो यह एक नय है और नयका प्रयोजन प्रतिबोध होता है इस कारण इस उपचरित सद्भूत व्यवहारनयमें परका उपचार करके प्रतिबोध कराया है।

अर्थो ज्ञेयज्ञायकसङ्करदोषभ्रमक्षयो यदि वा।
अविनाभावात् साध्यं सामान्यं साधको विशेषः स्यात् ।५४५।

उपचरितसद्भूतव्यवहारनयका प्रथम फल ज्ञेयज्ञायकसङ्करदोषक्षय— इस गाथामें यह बताया है कि उपचरित सद्भूत व्यवहारनयका फल क्या है। उपचरित सद्भूत व्यवहारनयका यह फल है कि इसकी ज्योतिमें ज्ञेय ज्ञायकमें सांकर्य न आये और ज्ञान पदार्थमें सांकर्य न आये। अर्थात् ज्ञानने पदार्थको विषय किया तो वहाँ केवल वह विषय मात्र है। कहीं विषय और ज्ञान एक नहीं होगए ! इस प्रकार की विलक्षणता का बताना इस नयका प्रयोजन है अथवा उसमें संकर दोष न आये, यह नयका प्रयोजन है। दूसरा प्रयोजन यह है कि यहाँ किसी प्रकारका भ्रम भी उत्पन्न न हो। जैसे अनेक दार्शनिकोंने ज्ञानको पदार्थसे निष्पन्न माना है तो वहाँ भ्रम का भी अवकाश हो गया और सांकर्य दोष भी बन जाता है। तो सांकर्य दोष और भ्रम दोनोंका दूर होना इस नयका फल है। उपचरित सदभूत व्यवहारनयमें इस ही ढङ्गसे तो समझा गया कि जैसे घट ज्ञान घटका नाम लेकर उस ज्ञानके स्वरूप का बोध किया गया। वस्तुतः वह ज्ञान जैसा अपने आपमें है सो ही है वह जीवका एक परिणमन है पर किस प्रकारका वह परिणमन है यह बतानेके लिए उस ज्ञानमें जो विषयभूत हुआ है उसका सम्बन्ध बताकर प्रसङ्ग बताकर समझाया जाता है कि यह घट ज्ञान और ज्ञान इन दोनोंमें अविनाभाव है प्रस्तुत उदाहरणमें घटित किया जा रहा है कि जो ज्ञान हुआ है वह घट विषयक ज्ञानका आकार न हो ऐसा तो नहीं है और घटविषयक आकारका प्रतिबोध है तिसपर भी वह ज्ञान न हो, और सीधा घट ज्ञान हो गया हो ऐसा भी नहीं है। अर्थात् यह ज्ञान सामान्य साध्य है और घट ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिक विशेष ये साधक हैं। इन दोनोंका अविनाभाव है। इसका कारण यह है कि पदार्थ जो प्रमेय होते हैं अतएव किसी न किसीके ज्ञानके विषयभूत होते ही हैं। ज्ञानमें विषयभूत हो जाना यह प्रत्येक सत्‌में स्वभाव पड़ा हुआ है और यहाँ ज्ञानको देखा तो वह भी निर्विषय नहीं होता। यदि किसी विषयको लेकर अपने स्वरूपका निर्माण करता है? निर्माण क्या करता? वह सहज होता रहता है! ज्ञान के परिणमन चलते हैं। वहाँ कोई परविषयक भूत हुआ करता है। तो जब इस तरहका सम्बन्ध है तो ऐसी दशामें कुछ लोग सांकर्य जैसी बुद्धि बना सकते हैं।

उपचरितसद्‌भूतव्यवहारनयका द्वितीय फल ज्ञेयज्ञायकविषयक भ्रमक्षय कुछ लोग ज्ञेयज्ञायकके सम्बन्धमें भ्रम उत्पन्न कर सकते हैं। उस ज्ञानकी उत्पत्ति घट से हुई, उस ज्ञानमें घट जैसा तद्‌रूप्य है, आदिक भ्रम हो सकते हैं। तो सांकर्य और भ्रम दोनोंको दूर कर देना उस नयका फल है कुछ लोग जो पदार्थोंका स्वरूप यथार्थ नहीं समझते वे ज्ञानको घट पट आदिक पर पदार्थोंका धर्म बतलाते हैं और कोई कोई पुरुष पर पदार्थके धर्म इस ज्ञानमें पहुँच जाते हैं इस तरह कहते हैं और कोई पुरुष इस ही विषय विषयीके सम्बन्धसे तादूरूप्य आदिक अनेक प्रकारका भ्रम बना लेते हैं। ये सारे अज्ञानके दोष दूर हो जायें ऐसी ज्योति इस उपचरितसद्‌भूत व्यवहारनयसे प्रकट हुई है। इसकी स्पष्ट घोषणा है कि है तो वह सब सद्‌भूत किन्तु व्यवहारकी दिशामें पर पदार्थसे उपचरित किया गया है। यहाँ अर्थविकल्पता ज्ञानका साधक है और अर्थविकल्प जैसा विशेषण घटज्ञान, पटज्ञान आदिक ये ज्ञानके विशेषण बन गए। ये ज्ञानके साधक हैं और सिद्ध क्या किया गया? सामान्य ज्ञान! प्रयोजन तो जीवके असाधारण गुणभूत उस सामान्य ज्ञानकी सिद्धि करना है। सो इन विशेषणोंके द्वारा भी सामान्य ज्ञानकी सिद्धि होती है। वही घट पट आदिकके ये धर्म हैं प्रतिबोध यह सिद्ध नहीं होता। तो इस प्रकारका यथार्थ बोध करा देना और सांकर्य एवं भ्रमको दूर करा देना इस उपचरित सद्‌भूत व्यवहारनयका फल है।

अपि वाऽसद्‌भूतो योऽनुपचरिताख्यो नयः स भवति यथा।
क्रोधाद्या जीवस्य हि विवक्षिताश्चेदबुद्धिभवाः॥ ५४६॥

अनुपचरित असद्‌भूतव्यवहारनयका स्वरूप और उदाहरण - इस गाथामें अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनयका स्वरूप एवं दृष्टान्त बताया गया है। अनुपचरितसद्‌भूत व्यवहारनयका शब्दार्थ यह है कि व्यवहार असद्‌भूतका करना अर्थात् जो जीवादिक वस्तुमें सहज स्वभावतः बात नहीं पड़ी है उसका प्रतिपादन जब किसी परका आलम्बन लिए बिना हो रहा हो तब वह अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहार कहलाता है। जैसे अबुद्धिपूर्वक होने वाली कषायोंमें जीवके भावोंकी विवक्षा करना; सो यह अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय कहलाता है। ये क्रोधादिक विकारभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्मोदयवश निमित्त पाकर होते हैं अथवा कहो कर्म निमित्त पाकर होते हैं अथवा कहो कर्मोंके सम्बन्धसे होते हैं, अतएव ये जीवके नहीं कहे जा सकते। यद्यपि कषाय जीवमें ही परिणम रहे हैं परन्तु केवल जीवमें जीवके ही निमित्तसे स्वरूपतः उत्पन्न नहीं हो रहे अतएव ये जीवके नहीं कहे जाते। इस कारण ये असदभूत हैं, ऐसे असद्भूत भावोंको बिना उपचारके प्रतिपादन करना सो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। इन विकार भावोंमें अनुपचरितता इस ढङ्गसे आती है कि ये विकार भाव दो प्रकारके होते हैं एक बुद्धिगत दूसरे अबुद्धिगत। जो भाव बुद्धिमें आ रहे हैं स्थूलतासे उदयमें आ रहे हैं, जिनके विषयमें हम परिज्ञान कर सकते हैं, अनुभव और महसूस भी करते हैं ये कषायें हुई हैं ऐसे बुद्धिगत भाव तो होते हैं उपचरित, किन्तु जो विकार भाव अबुद्धिगत हैं जहाँ ये विकार सूक्ष्मतासे अनुभवमें आ रहे हैं, जिनके सम्बन्धमें यह निर्णय भी नहीं बन पाता कि ये हैं क्रोधादिक भाव, ऐसे अबुद्धिगत भावोंको जीवके बताना सो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। इस उदाहरणमें विकार भावोंको जीवके कहना इतना अंश तो असद्भूत व्यवहारपनेका है। जीव सत्में सहज स्वभावतः उत्पन्न नहीं हुए और फिर भी जीवके कहे जा रहे हैं यह तो असद्भूतपनेकी बात है और इसके साथ गुण गुणीका भेद तो चल ही रहा है, पर्याय अंशका जीवसे सम्बन्ध बताया ही जा रहा है तो यह व्यवहार अंश है और जो क्रोधादिक विकार अबुद्धिगत हैं, अनुभवमें नहीं आ पा रहे हैं उनको कहना इतनी बात अनुपचरितपनेकी है।

कारणमिह यस्य सतो या शक्तिः स्याद्विभावभावमयी।
उपयोगदशाविष्टा सा शक्तिः स्यात्तदाप्ययन्यमयी॥ ५४७॥

उपचरित असद्भूत व्यवहारनयकी प्रवृत्तिमें कारण—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयकी प्रवृत्ति क्यों हुई है? और इस प्रवृत्तिसे क्या बात ध्वनित हुई है? इसका कथन इस गाथामें किया गया है। जिस पदार्थकी जो शक्ति विभाव भावरूप हो रही है और कार्यकारिणी बन रही है उपयोग अवस्थामें आ ई हुई है तो भी वह शक्ति अन्य पदार्थकी नहीं कही जा सकती। यही अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयकी प्रवृत्तिमें हेतु है। यदि कोई शक्ति किसी दूसरी शक्तिरूप परिणम जाय तब एक पदार्थके गुण दूसरे पदार्थमें चले जानेसे संकर और अभाव दोष उत्पन्न हो जाता है। एक गुण दूसरेमें चला गया तो उसमें अब व्यक्तिता क्या रही कि यह यह है, यह वह है? जब दोनोंके गुण परस्पर प्रविष्ट हो गए तो वहाँ दो न रहेंगे! यों तो सांकर्य दोष आता है। दूसरा अभाव दोष इस प्रकार आता है कि यदि एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप बन जाय तो यह उस रूप बन जाय, वह इस रूप बन जाय! तो इसका अर्थ क्या हुआ? कोई भी न रहा! न यह रहा, न वह रहा। तो इस तरहका जो कोई कथन हो या कोई परिज्ञान कर रहा हो कि एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाती है तो वह मिथ्या कथन है। जीवमें जो क्रोधादिक विकार भाव आये हैं वे जीव के चारित्र गुणके ही विकार हैं और पर उपाधिका निमित्त पाकर निष्पन्न हुए हैं। तो यह चारित्रगुण कितने ही विकारमें आ जाय फिर भी वह जीवका ही रहेगा। बस यही परिचय असदभूत व्यवहारनयकी प्रवृत्तिमें कारण होता है।

फलमागन्तुक भावाः स्वपरनिमित्ता भवन्ति यावन्तः।
क्षणिकत्वान्नादेया इति बुद्धिः स्यादनात्मधर्मत्वात् ॥५४८॥

अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयका फल- अनुपचरित असदभूत व्यवहारनयका फल क्या है, अर्थात्, इस नयके परिज्ञानसे जीवको हितकी क्या शिक्षा मिलती है इसका वर्णन इस गाथामें किया है। अनुपचरित असदभूत व्यवहारनयने यह बताया कि अबुद्धिगत क्रोधादिक भाव जीवके हैं। तो इस वर्णनमें यह शिक्षा मिलती है कि ये भाव स्वपर निमित्तक हैं। अर्थात् हुए तो जीवमें, पर हुए कर्मोदयका निमित्त पाकर अतएव आगंतुक भाव हैं, वे आत्माके धर्म नहीं हैं और वे क्षणिक भी हैं। तो क्षणिक होनेके कारण तथा आत्माके धर्म न होनेके कारण ये क्रोधादिक विकारभाव ग्राह्य नहीं हैं। ऐसी बुद्धि इस नयकी ज्योतिमें बनती है। तब स्पष्ट ही यह कहा जा रहा कि यह असद्भूतका व्यवहार हैं। जो सद्भूत आत्मामें स्वयं सहज नहीं हुए हैं, किन्तु उपाधिका निमित्त पाकर हुए हैं, इस कारण ये जीवके नहीं हैं, यह बुद्धि बनती है और इस बुद्धिके बननेसे जीवको उन विकारोंसे उपेक्षा हो जाती है और जो आत्म-स्वभाव है उसकी ओर रुचि हो जाती है। इस जीवको सर्वाधिक व्यामोह अपने विकार भावोंका है, क्योंकि इसकी निकटता विकारोंमें अधिक है। निकटता क्या स्वयं ही विकारके सम्बन्धमें यह जीव विकारमय हो जाता है। तो जब उन विकारोंसे ही उपेक्षा हो जाय तो यह जीव जानेगा किसे ? रमेगा किसे ? फिर तो अनन्य शरण होकर अपने आपमें रमेगा। तो इस असद्भूत व्यवहारनयकी ज्योतिमें यह निर्णय बता दिया कि ये आगंतुक क्रोधादिक भाव जीवके नहीं हैं। और इस ज्योतिमें भी विकारोंसे उपेक्षा हुई और निज तत्त्वकी ओर उसकी दृष्टि लगी। उसने यहाँ यह समझ लिया कि ये भाव परके निमित्तसे हुए हैं, इस कारण अग्राह्य हैं। सम्यग्ज्ञानमें निमित्त नैमित्तिक भाव जानते हुए वस्तुस्वातन्त्र्यका ज्ञान किया जाता है। तो इस नय में ये दोनों दृष्टियाँ बनी। ये क्रोधादिकभाव नैमित्तिक भाव हैं और नैमित्तिक भाव हैं तब इनसे कुछ मैं न्यारा हूं यह अपने आप सिद्ध होता है। तो इन नैमित्तिक भावोंसे न्यारा यह मैं ज्ञानस्वभाव हूं, इस नयके फलमें दो बातें जगीं—इन पर्यायोंसे उपेक्षा और शुद्ध स्वभावकी दृष्टि। अतएव अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयमें यह अनुमान हुआ कि यह जीव अबुद्धिगत विकारोंसे भी उपेक्षित हो जाता है। अब उपचरित असद्भूत व्यवहारनयका स्वरूप कहते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपचरितोऽसद्भूतो व्यवहाराख्यो नयः स भवति यथा।
क्रोधाद्याः औदयिकाश्चितश्चेद्बुद्धिजा विवक्ष्याः स्युः ॥५४६॥

उपचरित असद्भूतव्यवहारनयका स्वरूप व उदाहरण— उपचरितोऽसद्भूत व्यवहारनयका विषय एक समान है, वे ही क्रोधादिक भाव अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयके विषय हैं; किन्तु इनमें अन्तर इतना पड़ा कि वे विकार अनुपचरित थे, क्योंकि अबुद्धिगत क्रोधादिक भावोंको देखा जा रहा था और इन नयमें ये क्रोधादिक विकार उपचरित हैं, जो स्थूल रूपसे बुद्धिमें आ रहे हैं, जिनको हम महसूस भी करते हैं, ऐसे समझमें आये हुए क्रोधादिक विकार जीवके हैं यह इस नयका विषय है। तो बुद्धिपूर्वक हैं अतएव उपचरित हुए और आत्माके नहीं हैं फिर भी आत्माके कहे जा रहे हैं। यह असदभूत व्यवहार है जिसके विषयमें यह ज्ञात हो जाता कि यह क्रोध है यह मान है वे सब बुद्धिगत क्यों कहलाते हैं? श्रेणीमें प्रायः अबुद्धिगत कषाय हैं और उससे नीचे भी अनेक कषायें इस जीवके अबुद्धिगत रहती हैं, जो समझमें भी नहीं आती, किन्तु औपाधिक भाव है, उदय पाकर होती ही रहती हैं और निष्फल भी नहीं रहती। जो कषायें होती हैं उनका फल बंध हो ही जाता है। जैसे जिस समय यह जीव स्वानुभूतिमें लगा है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवके अप्रत्याख्यानावरण कषाय भी मौजूद है। उसको उदय भी चल रहा है और उनके उदयके फलमें बन्ध भी चल रहा है, लेकिन हैं अबुद्धिगत क्योंकि अनुभव तो ज्ञानकी ओर है, उस ओर दृष्टि नहीं है अथवा इस ज्ञानानुभूतिके समय भी कितने ही कषायभाव बुद्धिगत नहीं हो पाते। विशेष अनुभाग वाले कषाय भाव बुद्धिगत हो जाते हैं। तो जो बुद्धिगत क्रोधादिक भाव हैं उनके विषयमें यह मानना कि ये जीवके हैं, यह कहना सो उपचरित सदभूत व्यवहारनय है। यहाँ कुछ गलत नहीं कहा गया। जीवके परिणमन हैं इस कारण जीवके कहे गए हैं, लेकिन हैं ये औपाधिक भाव। जीवके स्वतः सिद्ध स्वरूप नहीं है इस कारणसे ये असदभूत व्यवहारनय कहलाते हैं। कोई पुरुष क्रोध कर रहा और जानता भी है कि यह क्रोध भाव है फिर भी वह अपने उस क्रोधभावको न समझे या कष्ट जानकर अथवा अज्ञान अवस्थामें उसे बताये तो समझना चाहिए कि वह उपचरित सदभूत व्यवहारनयका विषय है। अज्ञानीका यह भाव तो मिथ्यात्व में आ जाता है और ज्ञानीका यह भाव असदभूत व्यवहारनयमें आता है। क्रोधादिक भाव केवल जीवके नहीं हैं। जीवके परिणमन हैं, पर जीवके निमित्तसे नहीं हुए हैं। यदि जीवके निमित्तसे ये विकार भाव हों तब तो शाश्वत रहना चाहिए। तो जीवमें हुए हैं किन्तु हैं औपाधिक भाव। कर्मोदय भाव। उन्हें जीवके कहा इतना अंश तो असदभूतका है और क्रोधादिक समझकर फिर उन्हें जीवके बतलाना ऐसी जो व्यक्त समझ बनी हैं, जिसमें कि उपचार किया गया है वह उपचार अंश है। ऐसी बुद्धि पूर्वक क्रोधादिक भाव प्रमत्त अवस्था तक होते हैं, उनको जीवके कहना सो उपचरित असद-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भूत व्यवहारनय है। अब बतलाते हैं कि इस नयकी उत्पत्तिमें कारण क्या हुआ? किस कारणसे इस नयकी ज्योति प्रकट हुई?

बीजं विभावभावाः स्वपरोभय हेतवस्तथा नियमात्।
सत्यपि शक्ति विशेषे न परनिमित्ताद्विना भवन्ति यतः ॥५५०॥

उपचरित असदद्भूत व्यवहारनयकी प्रवृत्तिका कारण— उपचरित असदभूत व्यवहारनयकी निष्पत्तिमें कारण यह है कि ये विभावभाव स्वपर निमित्तक हैं, अर्थात् स्वके संस्कार से हुए हैं। स्वसे हुए हैं, किन्तु हुए हैं कर्मोदयका निमित्त पाकर। सो यहाँ यह बोध रहता है कि यद्यपि क्रोधादिक विकार जीव द्रव्यके चारित्र शक्तिके परिणमन हैं, विकृत परिणमन हैं तो हैं जीवके ही परिणमन किन्तु वे पर निमित्त बिना नहीं हो सकते। ऐसी बुद्धि इस उपचरित असदभूत व्यवहारनयकी निष्पत्तिमें कारण हुई और इससे शीघ्र ही यह शिक्षा मिलती है कि यह मैं नहीं हूं यह मेरा स्वरूप नहीं है। मुझे इसमें रमना नहीं है, उसको पकड़कर नहीं रहना है और इस हीके साथ साथ सर्व जीवोंमें भी ऐसी ही स्वरूपकी दृष्टि जगती है। सभी जीवोंके ये विकारी भाव उनके स्वरूपतः नहीं हुए और इस दृष्टिमें व्यवहारके लिए भी यह शिक्षा मिलती है कि किसीने मेरे प्रति कषायकी विरोध किया, विकल्प किया तो वहाँ यह समझ सकते हैं कि इस भगवान आत्माका क्या अपराध है? वैसा ही कर्म उदयमें आये हैं, उपाधिके निमित्तसे इस तरहसे हममें परिणाम जगे। जो स्वतः सिद्ध स्वतन्त्र आत्मा है वह तो निर्दोष है, ऐसी शक्तिका विचार करके दूसरे जीवोंमें भी निर्दोषताकी परख होती है तो उससे फिर अपनेको छोड़ नहीं देता है। तो इस उपचरित असदभूत व्यवहारनयकी निष्पत्तिका कारण यह है कि यह ज्ञान बना कि ये स्वयं नहीं हुए, किन्तु पर निमित्तसे हुए। अतः ये असदभूत हैं ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, ऐसी बुद्धिने इस नयको जन्म दिया है।

तत्फलमविनाभावात्साध्यं तदबुद्धिपूर्वका भावाः।
तत्सत्तामात्रं प्रति साधनमिह बुद्धिपूर्वका भावाः ॥ ५५१ ॥

उपचरित असद्भूत व्यवहारनयका फल—उपचरित असदभूतव्यवहारनयका फल क्या है? इसका वर्णन इस गाथामें है। इस नयमें बुद्धिपूर्वक विकारोंका परिज्ञान हुआ। जो क्रोधादिक विकार बुद्धिमें आये उन विकारोंका परिचय हुआ। उस परिचयसे अबुद्धिगत विकारका भी अनुमान बन गया जब अबुद्धिगत विकार बुद्धिमें ही नहीं आते तो उनका परिचय कैसे मिला? उसके परिचयका यह कारण बन जाता है। जब बुद्धि पूर्वक विभाव समझमें आ रहे हैं तो यह जाननेमें फिर कठिनता नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होती कि ऐसे विकार अबुद्धिगत में हुआ करते हैं। जो समझमें न आये ऐसे भी विकार हैं। जैसे बुखारकी डिग्रियाँ समझमें आती हैं यह १०४ डिग्री बुखार है यह १०५ डिग्री बुखार है आदि तो जो प्रतिक्रम डिग्रीकी भी चीज हो, ९८ डिग्री तक समझमें आया कि कुछ होता है तो यह भी ज्ञान किया जा सकता है कि कोई ९० डिग्री भी होता है। ९० डिग्री न बुद्धिमें आये, न परीक्षामें आये और इतना उतरते उतरते तो पुरुषका मरण भी हो जाता है लेकिन अबुद्धिगत होकर भी अनुमान तो यह बताता है कि ९० की १०२ भी डिग्रियां हुआ करती हैं। अगर १०२ नम्बरकी डिग्री न हों तो उनका मिल करके जो १०० डिग्री बनी उनका निर्माण नहीं हो सकता। ऐसे ही यह बुद्धिपूर्वक विकार जो एक बड़े अनुभागमें आये हैं वे समझमें आ गए। उनकी समझमें यह भी समझ बनती है कि अनेक विकार ऐसे अनुभागके भी होते हैं। ऐसे भी गुप्त मन्द होते हैं कि जो बुद्धिमें न आये। तो वे बुद्धिपूर्वक विकार भावोंकी समझमें यह समझ बनती है कि अबुद्धिगत भी विकार हुआ करते हैं। तो उन अबुद्धिगत विकारोंकी सत्ता समझनेके लिए ये बुद्धिपूर्वक विकार साधक हैं और वे अबुद्धिगत विकार साध्य होते हैं। तो उपचरित असदभूत व्यवहारके विषयसे अथवा इस विषयके परिज्ञानसे अनुपचरित असदभूत व्यवहारनयका विषय भी ज्ञात कर लिया जाता है, यह इसका एक साक्षात् फल है। साथ ही यह भी फल है कि इन बुद्धिगत विकारोंको असदभूत जानकर औपाधिक समझकर उनसे उपेक्षा हो जाय और जो आत्माका शुद्ध स्वरूप है स्वतः सिद्ध उसकी ओर दृष्टि आ जाय यह भी नयका फल है।

ननु चासद्भूतादि भवति स यत्रेत्यदगुणारोपः।
दृष्टान्तादपि च यथा जीवो वर्णादिमानिहास्त्विति चेत् ॥५५२॥

अतद्गुणारोपको असद्भूतव्यवहारनय माननेका शङ्काकारका प्रस्ताव

यहाँ शङ्काकार कह रहा है कि असदभूत व्यवहारका तो यह मतलब होना चाहिए कि एक वस्तुके गुण दूसरी वस्तुमें बताये जायें तो असदभूत व्यवहार है और वह ही लक्षण करनेमें शब्दार्थ भी बनता है कि जो सदभूत नहीं है जो पदार्थमें नहीं है वह गुण बताया जाय। तो दूसरे पदार्थके गुण पर्याय त्रिकालमें भी नहीं होते और तब उन्हें दूसरी वस्तुमें बताया जाय तब असदभूतपना ढङ्गसे बन गया तो यों असदभूत व्यवहारका यह लक्षण होना चाहिए कि एक वस्तुके गुण दूसरी वस्तुमें आरोपित किए जायें उसे असदभूत व्यवहार कहते हैं। और उसके लिए यह दृष्टान्त दिया जा सकता है कि जैसे जीवोंको वर्णादिमान कहना, जीवमें वर्ण नहीं है वर्ण है शरीरमें और शरीरके गुण धर्म जीवमें आरोपित किए गए। इस कारण ये असदभूत व्यवहार हैं, ऐसा माना जाना चाहिए किन्तु अभी जो असदभूत व्यवहारको तदगुणारोप कहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है वह उचित नहीं है। प्रसङ्ग यह बताया था कि उसी वस्तुके गुण उसी वस्तुमें आरोपित किए जायें उसको असदभूत व्यवहारनय कहते हैं। तो यों तदगुणारोपी व्यवहार होना चाहिए। जो गुण नहीं है, दूसरे पदार्थमें है उसके गुण इसमें बताना सो तदगुणारोप है और वही असदभूत व्यवहार सही मायनेमें हो सकता है। तदगुणारोपी व्यवहार यदि सदभूत व्यवहार बन गया उस हीके गुण उस हीमें बताना यह तो सदभूत जैसी बात है। असदभूतपनेकी बात नहीं आई। हाँ अतदगुणारोप है जो गुण नहीं है, दूसरी वस्तुमें हैं, उसके गुणोंका आरोप हो तो असदभूत बनेगा। सो यहाँ यह बीज भी सही बनता है कि वर्णादिक हैं भी पुदगलके गुण, किन्तु उन्हें जीव के कहा जा रहा है, इसे असदभूतव्यवहारनय कहते हैं। अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

तन्न यतो न नयास्ते किन्तु नयाभाससंज्ञकाः सन्ति।
स्वयमप्यतद्गुणत्वाद् व्यवहाराऽविशेषतो न्यायात् ॥५५३॥

असद्गुणारोपमें नयाभासताका समाधान—समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका उक्त अभिप्राय ठीक नहीं है क्योंकि जो असदगुणारोप हैं, परवस्तुके गुण अन्य वस्तुमें आरोपित करना, यह तो नय ही नहीं, किन्तु नयाभास है। तो नयाभास व्यवहारके योग्य नहीं है। नय तो उसे कहा जाना चाहिए जिससे कि कुछ शिक्षा मिले! कुछ आत्महितको प्रेरणाकी ज्योति मिले! नय तो वह सम्यक है किंतु दूसरी वस्तुके गुण दूसरी वस्तुमें बताना इससे न कोई शिक्षा मिलती है न आत्महित के लिए कोई ज्योति प्राप्त होती है। साथ ही यह भी समझना चाहिए कि नय हैं प्रमाणके अंश और प्रमाण कहलाता है जो वस्तु हो उस ही वस्तुके बारेमें उस ही वस्तुका स्वरूप धर्म समझना! तब नयकी बात ऐसी हो है अलगसे कि वह आंशिक जानता है परिपूर्ण वस्तुमेंसे अंशको ग्रहण करता है। जो वस्तुके ही अंशको ग्रहण करे वही तो नय कहलायगा। जो अन्यके गुण अन्यमें बताये वह तो नय भी नहीं कहा जा सकता। और ऐसे नयोंसे जो कि दूसरेके गुण दूसरेमें बताये जायें उसे नयाभास कहते हैं। वह मिथ्यानय है, तदगुणारोपी हो तब वह व्यवहारनय हो सकता है, अन्य वस्तुसे अन्य वस्तुमें कोई गुण समझना यह तो मिथ्या बात है। नय मिथ्या नहीं हुआ करता है। नयोंसे ज्योति मिला करती है। अतः अतदगुणारोपको असदभूत व्यवहार कहा है, ऐसा शङ्काकारका आशय संगत नहीं है।

तदभिज्ञानं चैतद्येऽतद्गुणलक्षणा नया प्रोक्ताः।
तन्मिथ्यावादत्वाद्ध्वस्तास्तद्वादिनोपि मिथ्याख्याः। ५५४।

असद्गुपलक्षणी नयोंकी मिथ्यावादरूपता—उक्त गाथामें जो समाधान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिया गया है उसका स्पष्टीकरण यह है कि जितने अतदगुणारोप वाले नय बताये गए हैं वे सब मिथ्या नय हैं और वे निराकरण करनेके योग्य हैं। और जो उन नयोंके सुनयके रूपसे मानते हैं वे भी मिथ्या कथन करते हैं। नय कहते हैं प्रमाणसे ग्रहण किए गए वस्तुके अंशको। अब जो कुछ अन्य वस्तुके गुणोंकी बात अन्य वस्तुमें लादी जारही है वह प्रमाणकी कसौटीपर सही नहीं उतरती। तो जो प्रमाणसे परिग्रही नहीं है वस्तुप्रमाणसे तो भिन्न भिन्न स्थलोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे पदार्थ जाने गए। तो जो प्रमाणसे नहीं जाना गया, एक वस्तुका गुण धर्म अन्य वस्तुमें है, यह बात जब प्रमाण से समझी ही नहीं गई है तो उस अंशको या धर्मको नय कैसे कहा जा सकता है? अतएव नयका लक्षण तो प्रमाण और परिगृहीत अंशको ग्रहण करना सो नय है और उनमें जो स्वभावका वर्णन करने वाले हैं वे तो सद्भूत हैं और जो विभागोंका वर्णन करने वाले हैं वे असद्भूत हैं उन असद्भूतोंमें जब किसी प्रकार आरोप किया जाता है तब उपचरित हो जाता है और जहाँ आरोप नहीं हो सकता है उतने सूक्ष्म विभागों का प्रधान हो उसे अनुपचरित कहते हैं। इस प्रकार अतदगुणारोप नय नहीं हो सकता है। यह उक्त समाधानमें स्पष्ट किया गया है।

तद्वादोऽथ यथा स्याज्जीवो वर्णादिमानिहास्तीति।
इत्युक्ते न गुणः स्यात्प्रत्युत दोषस्तदेकबुद्धित्वात् ॥५५५॥

अतद्गुणलक्षणी नयोंकी मिथ्यावादरूपताका कारण—अतदगुणारोपका व्यवहार करना मिथ्यानय क्यों कहलाता है? इसका कारण इस गाथामें बताया गया है। अतदगुणारोप इस कारण मिथ्यावाद है कि प्रथम तो यही बात हो रही है कि रूप, रस गंध, स्पर्श जीवमें त्रिकाल नहीं पाये जाते हैं, न क्षणिकरूपसे पाये जाते हैं, न शाश्वत रूपसे पाये जाते हैं। इन धर्मोंका जीवमें त्रिकाल अत्यन्ताभाव है फिर भी उसके बताये जा रहे हैं तो वह सम्यक कथन कैसे होगा? दूसरी बात यह है कि अन्य वस्तुके गुण अन्यमें बतानेका जो प्रयास किया है उससे इस जीवको लाभ क्या है? बल्कि इसमें उल्टा दोष ही आ रहा है। दोष यह आता है कि इस कथनको सुनकर कि जीवके रूप, रस, गंध आदिक हैं तो सुनकर लोग एकत्वबुद्धि करने लगेंगे। हाँ, जीवमें रूप है, जड़ता है, ये सब बातें एकत्व रूपसे आ जायेंगी। तब जीवके स्वरूपकी दृष्टि तक भी न रहेगी और ऐसी बुद्धि जगना यह अकल्याण रूप है, इस कारण अतदगुणारोपकी बुद्धि मिथ्यानय कहलाती है। जैसे प्रमाण जीवके लाभके लिए है, किसी भी प्रकारका यह लाभ पाये इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टका परिहार करे, प्रमाण के लक्षण में दर्शनशास्त्रमें यह भी तो बताया है कि जो हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करनेमें समर्थ हो उसे प्रमाण कहते हैं। यह बात यदि लौकिक घटनामें बनती है तो वह लौकिक रीतिमें प्रमाण है। यदि अलौकिक स्वरूपमें बनता है तो वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अलौकिक पद्धतिसे प्रमाण है। किन्तु जहाँ हितका तो परिहार हो, अहितकी प्राप्ति हो उसे प्रमाण नहीं कहा गया है और प्रमाणके अंश ही हैं नय। ऐसे नयोंमें भी यही बात घटित होनी चाहिए कि जो हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार करनेमें समर्थ हो वही नय कहलायगा। और, जो अहितमें ले जाय, हितसे दूर रखे उस नयको नय नहीं कहते हैं। अभी तक जो नयोंका वर्णन हुआ है उस सबमें यह स्पष्ट हो रहा है कि किसी अंशमें आत्महितकी प्राप्ति और अहितका परिहार होता है। जैसे निश्चय नयमें तो स्पष्ट ही यह प्रतिभास बसा हुआ है कि सहज स्वभावकी दृष्टि शाश्वत् स्वरूपकी उपासना यह जीवके लिए कल्याणकारी है।

सम्यक व्यवहारनयोंकी हितकारिता—व्यवहारनयोंमें जो सद्भूत व्यवहारकी बात बताई गई है उसमें भी यह दृष्टि पहुंचाई गई है कि यद्यपि आत्मा अखण्ड है उसमें गुण गुणीका भेद नहीं है, जो है वही पूर्ण सत् है तिसपर भी एक तीर्थ प्रकृतिके लिए, उसका प्रतिबोध करानेके लिए गुण गुणीका भेद करके व्यवहार किया जाता है कि ज्ञान जीवका गुण है। जिसमें ज्ञान पाया जाय वह जीव है। तो इस सद्भूत व्यवहारने यह दृष्टि बनाया कि ऐसा कहा जा रहा है व्यवहारसे पर यथार्थतया यह न मान लेना चाहिए कि जीवकी सत्ता जुदी है, ज्ञान कुछ जुदा सत् है और जीवमें ज्ञान बसा हुआ है, इस प्रकारकी दृष्टि पैदा करानेके लिए सद्भूतव्यवहार की निष्पत्ति की गई है। इसी प्रकार जैसे विकल्प सङ्कटोंसे गुजर रहे हैं, उनका भी तो यथार्थ निर्णय करना आवश्यक है तभी तो उन विकल्पोंसे हट निर्विकल्प निराकुल दशामें आ सकेंगे। उसके लिए प्रमाण असद्भूत व्यवहारनयने किया है। ये क्रोधादिक भाव असद्भूत हैं अर्थात् कर्म उपाधिके निमित्त सन्निधानमें उत्पन्न हुए हैं जिससे फलित दृष्टि यह निकलती है कि मेरे स्वरूप नहीं हैं। मैं तो शाश्वत् अखण्ड हूं एक प्रतिभास स्वरूप हूं। ये सब हो रहे हैं तो निमित्त नैमित्तिक भावके प्रसंगसे हो रहे हैं। ये मैं नहीं हूं। उन विभाव भावोंसे उपेक्षित हूं, उन्हें ग्राह्य न मानें और उन सबसे भिन्न जो आत्मस्वभाव है अनादि अनन्त अखण्ड अहेतुक, उसकी उपासनामें उत्साह जगे, उस ओर दृष्टि बने, इसकी ज्योति यह असदभूत व्यवहारनय देता है। यहाँ तक व्यवहार में सदगुणारोपकी बात कही गई है लेकिन अतत्गुणारोपकी बात यदि दिखाई जाय तो उससे जीवका बिगाड़ ही होगा है, वह उल्टी श्रद्धा कर लेगा, इस कारण अतद्गुणारोपका जो व्यवहार है वह नय नहीं कहला सकता, किन्तु मिथ्या प्रतिपादन होनेसे नयाभास कहलाता है।

ननुकिल वस्तु विचारे भवतु गुणो वाथ दोष एव यतः।
न्यायबलादायातो दुर्वारः स्यान्नयप्रवाहश्च ॥५५६॥

अतदगुणारोपमें भी नयत्वकी दुर्निवारताकी आरेका—यहाँ शङ्काकार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहता है कि जब वस्तुका विचार किया जा रहा हो उस समय चाहे कुछ गुण हो, च हे कोई दोष हो उसकी यथ र्थ सिद्धिमें दोष गुण आते रहे, पर नयोंका जो प्रवाह न्याय नीतिके फलसे आया हुआ है वह तो दूर नहीं किया जा सकता। जो वस्तु जिस रूपमें है उसी रूपमें वह सिद्ध होगी। चाहे दोष आये अथवा गुण आये न्याय नीति का उल्लंघन न करके कथन करना ही युक्त है। जो उक्त गाथामें यह कहा है कि रूप रस आदिवान जीव है ऐसा कथन उपचार असदभूत व्यवहारनय नहीं है किन्तु नया॰ भास है। तो नयाभास इसी बलपर तो कहा गया कि कोई यदि ऐसा सुन लेगा कि जीव वर्णादिमान है तो वह वर्ण जो जीवमें एकत्वबुद्धि कर लेगा और एकत्वबुद्धि करनेसे उल्टा उसका यत्न ही होगा सो चाहे कोई दोषकी और जाय या गुण ले पर नयोंका व्यवहार जिस प्रकारमें होना चाहिए वह तो होगा ही तब फिर जीव वर्णादि-मान है इस कथनको उपचरित असदभूत व्यवहारनय कथन मान लें। इस नयकी सिद्धिमें जीव और वर्णादिमें एकता भले ही प्रतीत हो परन्तु आखिर है तो यह भी एक नय कि जीव वर्णादिमान है। वर्ण जीवमें असदभूत है और वर्णादिकका जीवमें उपचार किया गया है। तब उसकी सिद्धि आवश्यक है। उसे क्यों मिथ्या बताया जा रहा है? अब उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

सत्यं दुर्वारः स्यान्नयप्रवाहो यथा प्रमाणाद्वा।
दुर्वारश्च तथा स्यात्सम्यङ् मिथ्येति नयविशेषोपि ॥५५७॥

नयविशेषोंके सम्यक् व मिथ्या ये दो भेद कर देनेपर उक्त शंकाका सहज समाधान शङ्काकार यह युक्ति देकर कि नय प्रवाह अनिवार्य है ऐसा सिद्ध करके जो जीवादिमान है इसे भी उपचरित सदभूत व्यवहारनयका विषय कह दिया गया है सो ऐसा सिद्ध नहीं किया जा सकता। यह बात ठीक है कि नयका प्रवाह अनिवार्य है पर साथ ही यह भी तो अनिवार्य है कि वह नय प्रवाह पराधीन हो। यदि वह प्रमाणाधीन है तब वह नय प्रवाह है और उसे नयोंमें शामिल किया जा सकता है। तो नय प्रवाह अनिवार्य है ऐसा मानकर भी चले तो मान लीजिए कि कोई भी बात कही जाय वह किसी नयमें आनी चाहिए, आ जाय, पर यह भी तो एक तथ्य है कि कोई नय यथार्थ होता है और कोई नय मिथ्या होता है। ऐसे नयोंकी विशेषता भी तो अनिवार्य है, उसे भी मान जीजिए। तो जीव वर्णादिमान है। यह कहना नय भी मान लीजिए, तो यही माना जायगा कि यह मिथ्या नय है। नयका एक साधारण लक्षणके किसी अंशका कथन करना सो नय है कुछ बात कहना सो नय है और भले ही एक असत्य बातका वर्णन किया सो वह नय बना रहे किन्तु वह नय मिथ्या नय है, क्योंकि नय दो विधियोंसे प्रवृत्त होता है एक सम्यकरूपसे और दूसरा मिथ्यारूपसे। इसी विषयको और स्पष्टरूपसे सुनो!

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थविकल्पो ज्ञानं भवति तदेकं विकल्पमात्रत्वात् ।
अस्ति च सम्यग्ज्ञानं मिथ्याज्ञानं विशेषविषयत्वात् ॥ ५५८॥

अर्थविकल्पताकी समानता होनेपर भी नयोंमें उक्त द्वैविध्यकी संभवता—ज्ञान अर्थ विकल्पात्मक होता है अर्थात् ज्ञान स्व और पर पदार्थको विषय करता है. इस कारण ज्ञान सामान्यकी अपेक्षासे एक ही है. क्योंकि जितने भी ज्ञान होते हैं वे सब अर्थ विकल्पात्मक होते हैं, परन्तु यह भी तो समझना चाहिए कि विशेष विषयों की अपेक्षासे उस वस्तुके दो भेद हो जाया करते हैं एक सम्यक ज्ञान और दूसरा मिथ्या ज्ञान । तो जैसे प्रमाणमें अर्थविकल्पताकी दृष्टिसे सभी जगह समान होनेपर भी वहाँ प्रमाण और प्रमाणाभास अथवा कहो सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान ये दो पद्धतियाँ बन जाती हैं । इसी प्रकार नयप्रवाह अनिवार्य है, किसी कथनमें अथवा अतदगुणारोपमें या तदगुणारोपमें फिर भी इस बातको इंकार नहीं किया जा सकता कि नयकी भी दो पद्धतियाँ हैं – एक मिथ्यारूप और एक यथार्थरूप ।

तत्रापि यथावस्तुज्ञानं सम्यग्विशेषहेतुः स्यात् ।
अथ चेदयथावस्तु ज्ञानं मिथ्याविशेषहेतुः स्यात् ॥ ५५९ ॥

ज्ञानके द्वैविध्यकी संगतता—और भी सुनो ! जैसे उन दोनों ज्ञानोंमें ज्ञानपनेका कारण यथार्थ ज्ञान है और मिथ्या ज्ञानपनेका कारण वस्तुका अयथार्थज्ञान है तो यथार्थ वस्तु जानी गई या अयथार्थ वस्तु जाने इसका अर्थ यही तो है कि जिस प्रकारसे अर्थ है उस प्रकारसे ज्ञान हो उसे यथार्थ ज्ञान कहते हैं और जिस प्रकारसे अर्थ नहीं है उस प्रकारसे ज्ञान हो तो उसे अयथार्थ ज्ञान कहते हैं । जो वस्तु ज्ञानमें विषयभूत हुआ है उस वस्तुका वैसा ही ज्ञान होना जैसा कि वह है, इस हीका नाम सम्यग्ज्ञान है । जैसे किसीको यह ज्ञान बन रहा कि यह चाँदी है, जिस पदार्थके विषय में यह ज्ञान बन रहा कि चाँदी है वह यदि चाँदी ही है तब तो उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और यदि उसके सम्बन्धमें यह विकल्प हो गया हो कि यह सीप है तो पदार्थ तो है चाँदी, जिसको लक्ष्यमें लेकर विकल्प हो रहा है और विकल्प बना सीपका तो यह मिथ्या ज्ञान हो गया । जैसे ज्ञानमें वस्तु तो कुछ और ही पड़ी हो और ज्ञान दूसरे पदार्थका बन जाय वही तो मिथ्याज्ञान है, तो देखिये ! विषय विशेषकी अपेक्षा ज्ञान में सम्यक और मिथ्या ये दो भेद हो गए ना तो ज्ञानपनेकी बात तो अनिवार्य हो गई क्योंकि अर्थ विकल्प यहाँ भी है वहाँ भी है, जब चाँदीको चाँदी जान रहा है वहाँपर भी अर्थ विकल्प है । पदार्थ प्रतिभास है और जब चाँदीको सीप समझ रहा है तब वह भी एक अर्थ विकल्प है. पर वह अयथार्थ है । तो जैसे विषय विशेषकी अपेक्षासे ज्ञान सम्यक और मिथ्या हो जाता है उसी प्रकारसे विशेषकी अपेक्षासे नय भी सम्यक और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिथ्या हो जाता है। अब इस ही बातको अगली गाथामें कह रहे हैं।

ज्ञानं यथा तथासौ नयोस्ति सर्वो विकल्पमात्रत्वात् ।
तत्रापि नयः सम्यक् तदितरथा स्यान्नयाभासः ॥५६०॥

ज्ञानकी तरह नयोंमें भी द्वैविध्यका औचित्य— जिस प्रकारसे ज्ञान सम्यक और मिथ्यारूप होता है, उसी प्रकार नय भी सम्यक और मिथ्यारूप होता है, जैसे सभी ज्ञान सामान्यज्ञान दृष्टिसे ज्ञान ही कहलाते हैं, क्योंकि सर्व जगह अर्थविकल्प पड़ा हुआ है इस ही प्रकार सर्व नय भी सामान्य नयकी अपेक्षासे नय कहलाते हैं, क्योंकि इस खण्डित विषयको ही समझाया गया है। लेकिन जैसे ज्ञान सामान्य ज्ञान अपेक्षासे समान होनेपर भी विषय विशेषकी अपेक्षासे ज्ञानमें दो प्रकार बनते हैं एक सम्यग्ज्ञान और दूसरा मिथ्याज्ञान इसी प्रकार नय पद्धतिके ढङ्गसे द्रव्यनयोंमें समानता होनेपर भी विषय विशेषकी अपेक्षासे कोई नय सम्यक नहीं कहलाता है, कोई नय मिथ्या नय कहलाता है। वस्तुमें जो अंश व गुणरूपमें पाया जाय और न पर्यायरूपसे पाया जाय किन्तु अत्यन्त भिन्न अन्य पदार्थके गुण या पर्यायका आरोप किया जाता हो वह नय तो मिथ्या नय है। और जो नय वस्तुके स्वभावको, विभावको, गुण को, पर्यायको, किसी भी प्रकारके अंशको समझ रहा है चाहे आरोप करके अथवा बिना विचारके, वह सब सम्यक नय है।

तद्गुणासंविज्ञानः सोदाहरणः सहेतुरथ फलवान् ।
यो हि नयः स नयः स्याद्विपरीतो नयो नयाभासः ॥५६१॥

नय और नयाभासका स्वरूप—जो तदगुण सम्विज्ञान हो अर्थात् गुण गुणीके भेद पूर्वक किसी वस्तुके विशेष गुणको उस हीमें बताने वाला हो, उदाहरण सहित हो, हेतु सहित हो, जिसका कोई फल हो वही नय नय कहलाता है। जैसे सद्-भूत असदभूत व्यवहारनयमें भी जो कुछ कहा गया है वह गुण गुणीके भेद करके वस्तुके ही गुण अथवा पर्यायको कहा गया है और उसका उदाहरण मौजूद है। जीव का गुण ज्ञान है, क्रोधादिकभाव जीवके हैं ऐसे सर्व उदाहरण भी हैं और उन नयों की प्रवृत्तिका कोई कारण भी है। असदभूत व्यवहार क्यों बना ? क्या देखा, कैसी दृष्टिकी जिससे इस नयकी निष्पत्ति हुई है, इसी प्रकार सभी नयोंके सम्बन्धमें हेतु भी बताया है जिसका कि विस्तार पूर्वक वर्णन पहिले ही किया है और उनका फल भी बताया है। प्रत्येक नयके व्यवहारसे जीव कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करना ही है जैसे सदभूत व्यवहारमें यह समझा कि जो गुण गुणीके भेद पूर्वक बताया जा रहा है वह समझनेके लिए है कि वस्तु किस स्वरूपमें है किन्तु परमार्थतः वस्तुमें गुण गुणी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का भेद नहीं पड़ा हुआ है। जहाँ असदभूत व्यवहारनयका व्यवहार हुआ है वहाँ यह फल बताया गया हैं कि समझने वाले पुरुष वहां यह समझ लेते है कि ये क्रोधादिक भाव हो तो रहे हैं जीवमें तो है विभाव परिणमन परन्तु कर्मोदय उपाधिके सन्निधान से हुए हैं अतएव औपाधिक भाव हैं, वे ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, उनसे निराला जो सहज ज्ञान स्वरूप है वही ग्रहण करने योग्य है। ऐसी ज्योति इस नयको प्राप्त होती है। तो यों उनका फल भी है जो जहाँ उस हीका गुण उसमें बताया जाय जिसके उदाहरण हों जिसके हेतु हों, जिसके फल हों, वही नय नय कहलाता है, इन बातोंसे उल्टा जहाँ धर्म पाया जाय या उल्टी बात पायी जाय वह सब नयाभास कहलाता है और जहाँ अन्य पदार्थका गुण अन्यमें बताया जा रहा हो, जिसको सही समझानेके लिए प्रकटमें कोई उदाहरण न मिलता हो जिसकी प्रवृत्तिमें कोई वास्तविक हेतु न हो और जिसका फल भी कुछ न हो, बल्कि हितके बजाय अहितकी ओर जाय भागे, ऐसी जहाँ बातें पायी जायें वे भी नयाभास कहलाती हैं

फलवत्वेन नयानां भाव्यमवश्यं प्रमाणबुद्धि यतः ।
स्यादवयविप्रमाणं स्युस्तदवयवा नयास्तदंशत्वात् ॥५६२॥

प्रमाणकी भाँति नयोंमें भी फलवत्त्व— इस गाथामें यह बतला रहे हैं कि जिस तरह प्रमाण फल सहित होता है उसी प्रकार नयोंका भी फल सहित होना अत्यन्त आवश्यक है। इसका कारण यह है कि प्रमाण तो अवयवी है, नय अवयव कहलाता है। यदि नयोंका कोई फल नहीं है तब प्रमाण भी फल रहित बन जायगा। परन्तु ऐसा है ही नहीं। प्रमाण सब फलवान हैं, हेय वस्तुको त्याग दें, उपादेय वस्तु को ग्रहण करें, उपेक्षा योग्य वस्तुकी उपेक्षा करें ये सब फल उसमें निहित हैं अतएव प्रमाण फल सहित ही है। इसी प्रकार नयोंका भी फल सहित होना अति आवश्यक है और सम्यक नयोंके स्वरूपके वर्णनके प्रसङ्गमें भली भाँति यह बता भी दिया गया कि इन नयोंका क्या फल है? नयोंकी उत्पत्तिमें मूलकारण प्रमाण है। अर्थात् प्रमाणसे ग्रहण किए गए वस्तुमें ही तो अंशका परिज्ञान करना नय कहलाता है। प्रमाणका जो पदार्थ कहा जाता है उस हीके एक अंशको लेकर भेद दृष्टिसे जो पदार्थ का विवेचन होता है उस हीका नाम तो नय है, या यों कह लीजिए कि सम्पूर्ण पदार्थ को तो विषय करने वाला प्रमाण है और उसके एक देशको विषय करने वाला नय है। तो यों नय तो अंशरूप हुआ और प्रमाण अंशीरूप हुए। तो अंश अंशीरूप होनेसे यह मानना पड़ेगा कि प्रमाणके समान नय भी फल सहित होता है।

तस्मादनुपादेयो व्यवहारोऽतद्गुणे तदारोपः ।
इष्टफलाभावादिह न नयो वर्णादिमान् यथा जीवः ॥५६३॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अतद्गुणारोपमें नयाभासताका निर्णय—जिस वस्तुमें जो गुण नहीं है उस वस्तुमें अन्य वस्तुका गुण जब आरोपित किया जाय या दूसरी वस्तुके गुण दूसरे वस्तुमें रख देनेकी विवक्षाकी जाय तो वहाँ ऐसा व्यवहार किया जाता है जो व्यवहार ग्रहण करने योग्य नहीं है, क्योंकि उस व्यवहारसे कुछ भी हितकी प्राप्ति नहीं होती, जैसे प्रस्तुत शङ्काको ही ले लीजिये जीवको रूप रङ्ग वाला बता देना उसमें कौन सा हित मिल जायगा ? हितकी तो बात क्या, ऐसा सुनकर लोग जीव और पुदगलको एक ही समझने लगेंगे। पुदगलसे निराला जीव है उसकी पहिचानमें उनका कोई आधार न उत्थान और शान्तिका उपाय खतम हो गया क्योंकि अन्य वस्तुके गुण किसी अन्य वस्तुमें रखे जा रहे हैं ऐसे प्रयासको सम्यकनय नहीं कहा गया। वह व्यवहार मिथ्यानय है। तो भले ही ऐसे प्रसङ्गोंमें जहाँ कि दूसरी वस्तुके गुण दूसरी वस्तुमें रखे जानेका प्रयास हुआ, विवक्षा हुई, नय कह लीजिए, पर वह नय नय नहीं है किन्तु नयाभास है, ऐसा नयाभास हितार्थी पुरुषोंको ग्रहण न करना चाहिए। इस कारण अतदगुणारोपका व्यवहार सम्यक व्यवहार नहीं है।

ननु चैवं सति नियमादुक्तासदभूतलक्षणो न नयः।
भवति नयाभासः किल क्रोधादीनामतद्गुणारोपात् ॥५६४॥

अतद्गुणारोपके कारण असद्भूतव्यवहारनयमें नयाभासताके प्रसंगकी आशंका—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि यदि एक वस्तुके गुण दूसरे वस्तुमें आरोपित करनेका नाम नयाभास रख दिया जायगा तो इस प्रकारसे तो जो अभी ऊपरके प्रकरणमें असदभूत व्यवहारनयकी बात कही गई है उसे भी नयाभास कह देना चाहिए। वह भी नय नहीं हो सकता, इसका कारण यह है कि असदभूत व्यवहार का विषय यह ही तो बताया कि क्रोधादिक भाव जीवके नहीं हैं, फिर भी उनके क्रोधादिकको जीवके कहा गया है। तो जो असदभूत हैं, जो जीवके गुण नहीं हैं उनको जीवमें आरोपित किया. ऐसी ही बात तो शङ्कामें भी तो नयाभास बता रहे थे कि जिसके जो गुण नहीं हैं वे गुण उसमें आरोपित करे उसे नयाभास कहते हैं, तो असदभूत व्यवहारनयमें यही तो किया गया है। क्रोधादिक जीवके गुण नहीं हैं फिर भी जीवके बताये गए हैं तो ये भी अतदगुणरूप हैं। अतदगुणरूपका अर्थ यह है कि उसके गुण तो हैं नहीं, पर उन गुणोंका आरोप उसमें किया गया है। जैसे जीव वर्णादिमान है ऐसा बतानेपर यह आपत्ति दी थी कि वर्णादिक जीवके गुण तो हैं नहीं फिर भी वर्णादिकको जीवके कहना यह नयाभास है, ऐसे ही यहाँ लगा लीजिए कि क्रोधादिक भाव जीवके गुण तो हैं नहीं, फिर भी उन्हें जीवके कहा गया है। तो यह भी तो उत्तर गुणरूप ही रहा इस कारण ग्रन्थकारका कहा हुआ जो असदभूत व्यवहारनय है वह भी नयाभास हो जायगा, तो उसे नयाभास बचानेके लिए कोई तरकीब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लगाना हो तो उस ही तरकीबसे जीव वर्णादिमान है वह भी नय बन जायगा। तो अतद्गुणारोपको नयाभास नहीं कह सकते। यदि कहेंगे तो असदभूत व्यवहारनय भी नयाभास बन जायगा। अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

नैवं यतो यथा ते क्रोधाद्या जीवसंभवा भावाः।

न तथा पुद्गलवपुषः सन्ति च वर्णादयो हि जीवस्य ॥५६५॥

जीव विभावोंमें तद्गुणारोपका कथन करते हुए उक्त शंकाका समाधान—समाधानमें कह रहे हैं कि शङ्काकारका उपयुक्त कहना सङ्गत नहीं है क्योंकि क्रोधादिक भाव जिस तरह जीवसे उत्पन्न हैं अथवा जीवके परिणमन हैं उस तरह वर्णादिक जीवके भाव नहीं हैं। न जीवसे उत्पन्न हुए हैं न जीवके परिणमन है। तो जीव वर्णादिमान है। इस नयाभासकी तुलनामें क्रोधादिक भाव जीवके हैं, इनका रखना सङ्गत नहीं है। क्रोधादिक भाव तो जीवके यों नहीं हैं कि क्रोधादिक भाव औपाधिक भाव हैं। कर्मोदयका निमित्त पाकर उत्पन्न हुए भाव हैं. इस जीवके परिणमन, पर जीवके सहज स्वभावसे ही उत्पन्न नहीं हुए। उपाधिका निमित्त पाकर हुए हैं, इस कारण क्रोधादिक भाव जीवके नहीं हैं। तो जिस तरह क्रोधादिक जीवके परिणमन होकर भी जीवके नहीं बताये, इस तरह यह गुंजाइस नहीं है कि जीवके वर्णादिक परिणमन हुए, क्योंकि वर्णादिक संयोगसे पुदगलके ही गुण हैं अन्य किसी भी द्रव्यके गुण नहीं हैं, रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चारों गुण पुदगलमें ही होते हैं। पुदगलके सिवाय अन्य किसी द्रव्यमें नहीं होते। तो जब वर्णादिकका जीवमें अत्यन्ताभाव है, उनका जीवमें प्रवेश ही नहीं है तब वर्णादिकको जीवके बताना किसी भी प्रकार नय नहीं हो सकता। क्रोधादिक जीवके चारित्रगुणके विकार हैं। ये पुदगल कर्मके निमित्त से उत्पन्न हुए हैं। इन विकारोंको उन उन नामोंसे कहा जाता है जिन जिन नामोंकी वे उदित प्रकृतियाँ हैं। तो चूंकि पुदगल कर्मके उदयका निमित्त पाकर हुए हैं आत्मा के चारित्र गुणके विकार इस कारण क्रोधादिक भाव आत्माके ही वैभाविक भाव हैं, वे पुदगलके भाव नहीं हैं। भले ही कर्मोदयका निमित्त पाकर हुए हैं, पर क्रोधादिकके भाव द्रव्य कर्मके परिणमन नहीं हैं। परिणमन तो जीवके ही हैं और हैं चारित्रगुणके विकार, इस कारणसे जीवमें उन क्रोधादिक भावोंका आरोप करना यह अतदगुणरूप नहीं कहा जा सकता। जीवमें विकार परिणमन हैं। जिस कालमें ये क्रोधादिक कषायें उत्पन्न हुई उस कालमें जीव क्रोधादिकमय है। इस कारण यदि क्रोधादिक भावोंका जीवमें आरोप किया गया है तो वह तदगुणारोप ही है। असदभूतनयका विषय तो इस कारण कहा जाता है इसे कि ये क्रोधादिक भाव शुद्ध आत्माके नहीं हैं। आत्माके सहज स्वभावसे ही व्यक्त नहीं हैं, किन्तु परका निमित्त पाकर व्यक्त हो जाते हैं। इस कारण क्रोधादिक विकारोंको असदभूत नयका विषय कहा जाता है। कोई भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नय चाहे सदभूत हो अथवा असद्भूत हो यदि वह तदगुणारोपी है तब तो उसे नय कहेंगे। यदि तदगुणारोपी नहीं है तो वह नयाभास है। रूप रस गंध आदिक पुद्गल के ही गुण है, वे जीवके कभी भी न हुए, न हैं, न होंगे, इस कारण रूप, रस, आदिक को जीवके किसी भी प्रकार नहीं कहा जा सकता। यदि कोई रूपादिकको जीवके भाव कहेगा तो वह मिथ्या दृष्टि है। यहाँ अतदगु॰ का आरोप किया गया है। जीव में त्रिकाल भाव है रूपादिकका फिर भी उन्हें जीवके कहेगा कोई तो वह अज्ञानी है। और इस प्रकारकी दृष्टि नयाभास कहलाती है।

अथसन्ति नयाभासा यथोपचाराख्य हेतुदृष्टान्ताः।
अत्रोच्यन्ते केचिद्धेयतया वा नयादिशुद्धार्थम् ॥५६६॥

कुछ नयाभासोंके उल्लेखका संकल्प—अब इस गाथाका ग्रन्थकार यह संकल्प करता है कि कुछ नयाभासोंका अब वर्णन करेंगे, नयाभासका जो इस गाथामें विशेषण दिया है उसका अर्थ है कि उपचार नाम वाले हेतु और दृष्टान्त ही नयाभास कहलाता है। जिनका तदगुणसे कोई सम्बन्ध नहीं फिर भी उनको बताना और हेतु देना अथवा दृष्टान्त देना यह सब ही नयाभास है। जहाँ तदगुणारोप नहीं है, केवल उपचार ही उपचार है वह तो अशक्ति ही कथन है। तो उपचार नाम वाले हेतु दृष्टांत का ही नाम नयाभास है ऐसे नयाभासोंका अब वर्णन किया जायगा और नयाभासोंके वर्णन करनेका प्रयोजन यह है कि उन नयाभासोंको समझकर हितैषी जान जायें, हेयरूपसे समझ जायें और उनको शुद्ध नयोंका परिज्ञान हो जाये। जब खोटे नयका वर्णन होगा तो इतना तो समझमें आ ही जायगा कि यह नय हेय है, इसमें कोई हित नहीं है और यह भी परिचयमें आ जायगा कि नयका शुद्ध स्वरूप यह होगा। तब यथार्थ स्वरूप समझा दिया जायगा कि ऐसा कोई कहे तो वह मिथ्यानय है। नयका विषय नहीं है तो यह भी ध्वनित हो जायगा कि नयका विषय यह होता है। मोटेरूप में यह समझिये कि जहाँ अत्यन्त भिन्न पदार्थके गुण किसी पदार्थमें आरोपे जायें, कहे जायें तो वह नय नहीं कहलाता, और उस ही पदार्थके गुण अथवा पर्यायें ये कुछ भी आरोपे जायें तो वह नय कहलाता है। तो ऐसे उपचार पूर्वक जो हेतु दृष्टान्त बताया जाता हो वह नयाभास है। एसे ही नयाभासोंका अब वर्णन करते हैं।

अस्ति व्यवहारः किल लोकानामयमलब्ध बुद्धित्वात्।
योऽयं मनुजादिवपुर्भवति सजीवस्ततोप्यनन्यत्वात् ॥५६७॥

लोकव्यवहारमें नयाभासताकी संभवता—बहुतसे लोग यह व्यवहार करते हैं कि जो मनुष्यादिकके शरीर हैं यही जीव है, शरीरको ही निरखकर यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीव हैं ऐसा समझते हैं, और लोग किसीका परिचय मानते हैं कि मुझे तो बहुत परिचय है। तो किसका परिचय है? शरीरके आकारोंका, रङ्ग, ढङ्गका, क्रियाका व्यवहारका। और, देखो इन्द्रियसे समझमें आया, ऐसे ही पदार्थको तो लोग परिचित मानते हैं। तो जो यह शरीर है सो जीव है ऐसा लोगोंका व्यवहार चलता है यह व्यवहार बुद्धिका अभाव होनेसे चलता है। पदार्थके स्वरूपका यथार्थ बोध है नहीं, तो जो सत्यबुद्धि है उसकी प्राप्ति तो हो नहीं सकती। तब अपने आपका मानना तो रहेगा ही अपने आपका अस्तित्व कौन मेटेगा और कौन मना करेगा, किन्तु जब अपने आपके सही स्वरूपका पता नहीं है तो परमें आत्म बुद्धि करेंगे ही। इसे शरीरोंको जीव कहना यह व्यवहार मिथ्या है, नयाभास है, ऐसा व्यवहार करने वाले लोग यों समझते हैं कि इस शरीरसे निराला कुछ जीव है ही नहीं। इस शरीरसे निराले जीव को किसीने अब तक देखा ही नहीं, न कभी कोई दिखा ही सकता है, और बात भी यह यथार्थ है कि इन्द्रियके द्वारा यह जीव जो शरीरसे निराला है वह समझमें आ ही नहीं सकता। और लोगोंने इन्द्रियको ही समझनेका एक मात्र साधन समझा है। तो जब इन्द्रियसे जीवरूप तो दिखा नहीं, दिखा शरीर और जीवको मना किया नहीं जा सकता। जो ज्ञानरूपसे व्यवहार कर रहा ऐसे उस तथ्यको मूलसे कैसे कोई मना कर सकता है? तो ऐसी स्थितिमें जब कि बुद्धि नहीं पायी तो लोगोंका यह व्यवहार बन गया कि जो यह शरीर है सो ही जीव है, क्योंकि यही जीवसे अभिन्न हैं। इससे निराला कोई जीव जीव नहीं है ऐसा व्यवहार तो करते हैं लोग, किन्तु यह व्यवहार मिथ्या है? कैसे यह व्यवहार मिथ्या है इसका वर्णन अगली गाथामें करते हैं।

सोऽयं व्यवहारः स्याद्व्यवहारो यथापसिद्धान्तात् ।
अप्यपसिद्धान्तत्वं नासिद्धं स्यादनेकधर्मित्वात् ॥५६८॥

देहमें जीवत्वबुद्धिके व्यवहारका मिथ्यापन— लोगोंका यह व्यवहार कि जो यह शरीर है सो ही जीव है यह अयोग्य व्यवहार है, अनुचित है, असत्य है, अथवा ऐसा व्यवहार करते हैं। क्यों है यह अयोग्य व्यवहार? इसका कारण है कि यह सिद्धान्तसे विरुद्ध है जो कुछ लोग सोच रहे हैं कि यह शरीर ही जीव है। तो यह सचाईसे रहित है इस व्यवहारमें सिद्धान्तका विरोध है, क्योंकि शरीर और जीव ये भिन्न भिन्न धर्मी हैं। अनेक धर्मी हैं, अनेक वस्तु हैं। एक पदार्थ नहीं हैं, इनका द्रव्य क्षेत्र काल भाव न्यारा न्यारा है। तो ऐसी स्थितिमें ये दोनों भिन्न भिन्न प्रसिद्ध ही हैं। और जब शरीर पुद्गल द्रव्य हैं वे भिन्न पदार्थ हैं जीव द्रव्य भिन्न पदार्थ हैं, फिर भी लोग शरीरमें जीवका व्यवहार करते हैं कि यह जीव है वे सिद्धान्तसे विरुद्ध प्रतिपादन करते हैं यह शरीर क्या है? अनन्त परमाणुओंका पुञ्ज। सभी परमाणु जड़ हैं, रूप रस, गंध स्पर्शवान हैं, यह शरीर भी जड़ है। रूप, रस, गंध, स्पर्श

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाला है किन्तु जो समझ सके समझनेकी वृत्ति जहाँ बनेगी वह मूर्त नहीं हो सकता, वह अमूर्त ही होगा। तो यों शरीर जड़ है, जीव चेतन है, शरीर वर्णादिमान है, जीव अमूर्त है, ऐसे प्रकट भिन्न भिन्न पदार्थोंको एकमेक करनेकी बुद्धि यथार्थ कैसे हो सकती है ? वह सब सिद्धान्त विरुद्ध ही बात है।

नाशङ्क्यं कारणमिदमेकक्षेत्रावगाहिमात्रं यत् ।
सर्वद्रव्येषु यतस्तथावगाहाद्भवेदतिव्याप्तिः ॥५६६॥

एक क्षेत्रावगाह होनेपर भी देहसे जीवकी विविक्तता—शरीर और जीवके सम्बन्धके प्रसङ्गमें कोई ऐसी आशङ्का कर सकता है कि जब शरीर और जीव एक क्षेत्रावगाही हैं और एक क्षेत्रावगाही होनेका लोकमें व्यवहार होता है, यह शरीर ही जीव है तो ऐसी आशङ्का भी न करना चाहिए क्योंकि एक क्षेत्रावगाही होनेसे कहीं पदार्थ एक नहीं बन जाता। देखो एक क्षेत्रमें ही सर्व द्रव्य रह रहे हैं। लोकाकाशके प्रदेशपर छहों द्रव्य रहते हैं। धर्म द्रव्य तो निष्क्रिय और लोकमें व्यापी है। वह तो सदा लोकाकाशमें व्यापकर रह रहा है, उसका तो किसी प्रदेशमें अभाव हो ही नहीं सकता। यही बात अधर्म द्रव्यकी है। अधर्म द्रव्य भी लोकाकाशमें व्यापक है, उसका भी कहीं अभाव नहीं हो सकता। आकाश द्रव्य तो लोकाकाशमें हैं। और उससे परे अनन्त अलोकाकाशमें हैं। वह तो एक अखण्ड है ही। अब जितने आकाश मे धर्मादिक छहों द्रव्य हैं उनका नाम लोकाकाश रख दिया गया। तो आकाश भी सर्वत्र मिलेगा। पुद्गल भी सूक्ष्म स्थूल आदिक जिस किसी भी प्रकारसे इस लोकाकाशके सर्व प्रदेशोंमे मिलेगा। काल द्रव्य लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक कालाणु रूप हैं ही और जीव इतने अनन्त हैं कि लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशमें अनन्त जीव पाये जाते हैं। तो लो यों एक क्षेत्रावगाही सभी द्रव्य हो गए, लेकिन क्या सब एक हो गए ? यदि एक क्षेत्रावगाही होनेसे एक मान लिए जायेंगे तो यहाँ अतिव्याप्ति दोष उत्पन्न होगा। छहों द्रव्य एक क्षेत्रमें रह रहे हैं लेकिन एक नहीं हैं। छहोंके लक्षण जुदे जुदे हैं, जीवका लक्षण चेतन है पुद्गलका लक्षण मूर्तपना है, याने रूप, रस, गंध स्पर्शमय होना। धर्मद्रव्यका लक्षण गति हेतुत्व है। उसकी सत्ता इन सबसे निराली है। अधर्मद्रव्य भी स्थिति हेतु है, इसकी भी सत्ता शेष पांचों प्रकारके द्रव्यों से निराली है। आकाश द्रव्य भी अवगाहन हेतुक है। उसका उसमें ही परिणमन है, वह भी सर्व पदार्थोंसे निराला स्वरूप रखता है कालद्रव्य परिणमनका कारण है। देखिये ! लक्षण जुदे जुदे हैं। यदि एक क्षेत्रावगाह होनेसे एकत्व बन जाय तो इन छहोंमें अति व्याप्ति दोष आयेंगे। ये सब एक हो जायेंगे तो कुछ भी न रहेगा, शून्यता हो जायगी, कोई द्रव्य ही न कहलायगा। अतः एक क्षेत्रावगाही हैं जीव शरीर, इस कारणसे जीव और शरीरको एक बताना असंगत बात है। यों जीव वर्णादिमान है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह अभिप्राय नय नहीं कहला सकता, किन्तु नयाभास ही है ।

अपि भवति बन्ध्यबन्धकभावो यदि वानयोर्न शङ्क्यमिति ।
तदनेकत्वे नियमात्तद्बन्धस्य स्वतोप्यसिद्धत्वात् ॥५७०॥

जीव और देहके एकत्वसिद्धिके लिये बन्ध्यबन्धक भावकी अकारणता कोई शङ्काकार ऐसी भी शङ्का रख सकता है कि जीव और शरीरमें परस्पर बन्ध बन्धक भाव है इसी कारण यह व्यवहार करना ठीक है कि शरीर ही जीव है। शरीर जीव है ऐसा समझनेका कारण तो है ना कि जीव और शरीरका परस्परमें बंध बंधक भाव है इसी कारण शरीर जीव है ऐसा व्यवहार होता है। समाधानमें कहते हैं कि वह शङ्का ठीक नहीं है क्योंकि बंध बंधक भावका बताना तो और पुष्ट करता है इस बातको कि शरीर और जीव न्यारे न्यारे हैं क्योंकि बंध नियमसे अनेक पदार्थोंमें होता है। एक ही पदार्थमें अपने ही आपसे बंधकी बात असिद्ध है। तब कहा जाता कि आत्मा पुदगलको बाँधने वाला है अथवा आत्मासे बाँधने वाला पुदगल है इस कारण पुदगल शरीर बंध है और आत्मा उसका बधक है ऐसा बंध बंधक सम्बंध होनेसे शरीरमें जीवका व्यवहार किया जाता है। यह शङ्का सङ्गत नहीं है। बंध तो तभी होता जब दो पदार्थ प्रसिद्ध हों। एक पदार्थ बंधने योग्य है एक पदार्थ बाँधने वाला है, तो बंध बंधक भाव बतानेसे स्पष्ट रूपसे द्वैत ही प्रतीत होता है। अतः बंध बंधक भावकी बात बताकर भी शरीर और जीवमें एकत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता ।

अथ चेदवश्यमेतन्निमित्तनैमित्तिकत्वमस्ति मिथः ।
न यतः स्वयं स्वतो वा परिणममानस्य किं निमित्ततया ।५७१।

जीव और कर्मके एकत्वकी सिद्धिके लिये निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध की अकारणता—अब शङ्काकार ऐसी भी शङ्का कर सकता है कि शरीर ही जीव है, ऐसी बुद्धि बननेका कारण यह है कि शरीर और जीवका निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। यों निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धके कारण शरीरमें जीवत्व बुद्धि बनती है। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना भी संगत नहीं है। क्योंकि निमित्त नैमित्तिक भाव बतानेमें भी तो दो पदार्थ सिद्ध हो जाते हैं, फिर एकत्व कहाँ रहा ? जो नैमित्तिक भाव है उसका अर्थ यही तो है कि किसी पदार्थका निमित्त पाकर कोई नैमित्तिक पर्याय हुई हैं। तो नैमित्तिक पर्याय जिस वस्तुमें हुई है वह वस्तु स्वयंमें भाव रूप परिणमन रहा है और उसमें जीव अलग पदार्थ है। जैसे कहा जाय कि कर्मके उदय के निमित्तसे क्रोध हुआ है तो निमित्त कहते ही यह बात स्पष्ट सिद्ध हो गयी कि कर्म

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जुदे पदार्थ हैं और क्रोध जहाँ हुआ है वह जुदा पदार्थ है। परिणमता हुआ ही जीव क्रोध रूप हुआ। तो जो परिणमन रहा है पदार्थ वह भिन्न है और निमित्तभूत पदार्थ भिन्न है। तो निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध तो शरीरमें निमित्तताका सूचक है और जीव में नैमित्तताका सूचक है, तो यह सम्बन्ध दोनोंमें एकत्व बुद्धिको उत्पन्न करने वाला न बन सका। क्योंकि जीव अपने स्वरूपसे ही परिणमन करता है। निमित्त कारणके निमित्तसे उसमें पररूपता नहीं आती इस लिए मनुष्यादिकके शरीरमें जीव यह व्यवहार करना नयाभास है। नयाभासके कुछ उदाहरण यहाँ बताये जा रहे हैं जिनमें उक्त ५ गाथाओंमें प्रथम नयाभासकी बात कही गई है कि शरीर ही जीव है ऐसा जो लोगोंका व्यवहार है वह व्यवहार नयाभास कहलाता है। अब दूसरा नयाभास अगली गाथामें कह रहे हैं।

अपरोपि नयाभासो भवति यथा मूर्तस्य तस्य सतः ।
कर्त्ता भोक्ता जीवः स्यादपि नो कर्मकर्मकृतेः ॥५७२॥

जीवको कर्म नो कर्मका कर्ता बतानेरूप द्वितीय नयाभासका निर्देश— दूसरा नयाभास यह बतला रहे हैं कि जीव मूर्तकर्म और नो कर्मका कर्ता है। इस नयाभासका स्पष्टीकरण यह है कि आहार वर्गणायें, भाषा वर्गणायें, तैजस वर्गणायें और मनो वर्गणायें ये चार प्रकारकी वर्गणायें जब जीवसे सम्बन्धित हो जातीं हैं तब इसीको नोकर्म कहा जाता है। जीवके सम्बन्धसे पहिले इसका नाम नोकर्म नहीं है, जब जीवसे सम्बन्धित हो लेती हैं ये चारों वर्गणायें तो ये नोकर्म कहलाने लगती हैं और कार्माण वर्गणायें जब आत्मसे सम्बन्धित होकर कर्मरूप परिणत हो जाती हैं तब कर्मके निमित्तसे कही जाती हैं। कर्मरूप परिणत होनेसे पहिले ये कर्म नहीं कहलाते, किन्तु इनका नाम रहेगा कार्माण वर्गणा जो कर्मरूप हो सकने की योग्यता रखती हैं ऐसी वर्गणायें स्कंध, अब ये कर्म और नोकर्म चूंकि शरीर वर्गणाकी पर्यायें हैं। और वे वर्गणायें पुदगल हैं अतएव मूर्त हैं। तो उन मूर्त वर्गणाओंका जो परिणमन है ऐसे कर्म और नोकर्म भी मूर्त हैं, ऐसे मूर्त कर्म नोकर्मका जीव कर्ता है तथा भोक्ता है, ऐसा कथन करना यह द्वितीय नयाभास बताया जा रहा है। जीव अमूर्त स्वरूप है, उसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि नहीं हैं और यह जीव ज्ञानादिक भावोंका ही कर्ता भोक्ता हो सकता है। जो जीवमें पाये जायें उन्हींका ही तो यह कर्ता भोक्ता होगा। अब उसको ज्ञानादिक भावोंका कर्ता भोक्ता कहना यही व्यवहार है। पर मूर्त कर्म, मूर्त नोकर्म जो अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं ऐसे पदार्थोंका कर्तृत्व और भोक्तृत्व जीवके लगाना यह नय नहीं, किन्तु नयाभास है।

नाभासत्वमसिद्धं स्यादपसिद्धान्ततो नयस्यास्य ।
सदनेकत्वे सति किल गुण संक्रातिः कुतः प्रमाणाद्वा ॥५७३॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुण संक्रांतिमृते यदि कर्ता स्यात्कर्मणश्च भोक्तात्मा ।
सर्वस्य सर्वसंकरदोषः स्यात् सर्वशून्यदोषश्च ॥५७४॥

उक्त द्वितीय नयाभासकी नयाभासताका कारण—मूर्त कर्मोंका जीव कर्ता भोक्ता है ऐसा कथन नयाभास ही कहलाता है। इसका स्पष्टीकरण इन दो गाथाओंमें है। मूर्त कर्मोंका जीव कर्ता भोक्ता है, यह कथन नयाभास है, क्योंकि यह व्यवहारनय सिद्धान्तके विरुद्ध है। सिद्धान्तका यह नियम है कि एक पदार्थके गुण दूसरे पदार्थमें संक्रान्त नहीं होते। जब कर्म और जीव दोनों भिन्न भिन्न पदार्थ हैं तब उनमें गुण संक्रमण किस प्रमाणसे होगा ? अर्थात् गुण संक्रमण नहीं हो सकता, तथा गुणोंका परिवर्तन हुए बिना जीव कर्मका कर्ता भोक्ता नहीं हो सकता। कर्ता भोक्ता का अर्थ तो यह है कि उस रूप परिणमन करना सो कर्तृत्व है, उस रूप अनुभवन होना सो भोक्तृत्व है। सो कर्ता भोक्ता गुणोंकी संक्रान्तिमें नहीं होता, वह तो स्वयं एक पदार्थमें होता है। यदि गुणोंकी संक्रान्तिके बिना ही जीव कर्मका कर्ता भोक्ता हो जाये तो इसका प्रभाव यह होगा कि सर्व पदार्थोंमें संकर दोष हो जायगा तथा सर्व शून्य दोष भी उत्पन्न हो जायगा। इन दो गाथाओंका तात्पर्य यह है कि यदि जीवके गुण पुदगलमें चले जायें तभी तो यह कहा जा सकेगा कि जीव पुद्गलका कर्ता और भोक्ता है। जैसे कपड़ा बुनने वालेके गुण कपड़ेमें आ जायें तभी वह वास्तव में बुनने वाला उस कपड़ेका कर्ता कहा जा सकता है अन्यथा कपड़ेमें कतृत्व आया ही क्या ? सो बात यह सही है। कर्तृत्व नहीं है। कपड़ेका भी कर्ता जुलाहा नहीं किन्तु कपड़ेके कर्तृत्वमें जुलाहा निमित्त है। कर्ता वह कपड़ा ही है। जो परिणमे उसे कर्ता कहते हैं, ऐसे ही कार्माण वर्गणायें कर्मरूप परिणमती हैं सो उन परिणामोंका कर्ता तो कार्माण पुदगल ही हैं। जीव तो वहाँ निमित्त मात्र है सो गुणोंका संक्रमण एकका दूसरेमें होता नहीं तब एकको दूसरेका कर्ता कहा नहीं जा सकता। यदि गुणोंका संक्रमण हुए बिना जीवको कर्मका कर्ता मान लिया जाय तो यही जीव क्यों कर्ता हो सभी जीव क्यों न कर्ता हो जायेंगे ? तो यों सभी पदार्थ एक दूसरेके कर्ता हो सकते हैं। ऐसी अवस्थामें धर्मादिक द्रव्योंका भी जीवमें कर्तृत्व सिद्ध होगा। तब फिर विश्वमें सर्व सांकर्य दोष हो जायगा। अब अगली गाथामें यह बताते हैं कि लोगों को यह भ्रम क्यों हो गया कि जीव कर्मका कर्ता है ? इस भ्रमका कारण स्पष्ट करते हैं।

अस्त्यत्र भ्रमहेतुर्जीवस्याशुद्धपरणतिं प्राप्य ।
कर्मत्वं परिणमते स्वयमपि मूर्तिमद्यतो द्रव्यम् ॥५७५॥

जीवके कर्म कर्तृत्वके भ्रमका कारण जीव विभावका निमित्तपना—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव कर्मोंका कर्ता है, इस भ्रमका कारण भी यह है कि जीवकी अशुद्ध परिणतिके निमित्तसे पुद्गल द्रव्य कार्माण वर्गणायें स्वयं कर्मरूप परिणत हो जाते हैं। तो यहाँ निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध दिखाना, बस इस ही बातको बढ़ाकर लोग जीव कर्मोंका कर्ता है ऐसा कह देते हैं। कर्म और जीव भावमें परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जैसे जीव कर्मका कर्ता है यह बात लोग निमित्तक सम्बन्ध दिखाकर कह डालते हैं ऐसे ही यह भी कह सकते हैं लोग कि पुदगल कर्म जीवका कर्ता है क्योंकि पुद्गल कर्मके निमित्तसे जीवमें विभाव उत्पन्न होते हैं। तो यों परस्पर एक पदार्थको दूसरे पदार्थका कर्ता कहनेका जहाँ लोकमें व्यवहार बन रहा हो तो समझना चाहिए कि निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। उसको ही बड़ा रूप देकर कर्ता है इस रूपसे व्यवहार करते हैं। वस्तुतः यह भ्रम भ्रम ही है वास्तविकता नहीं है और वहाँ केवल निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध माना जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वे पदार्थ दोनों पृथक स्वतंत्र स्वतंत्र पदार्थ हैं।

इदमत्र समाधानं कर्ता यः कोपि सः स्वभावस्य।
परभावस्य न कर्ता भोक्ता वा तन्निमित्तमात्रेपि ॥५७६॥

निमित्तत्व होनेपर भी किसीमें भी परके कर्तृत्व व भोक्तृत्वका अभाव
उक्त भ्रमके कारणको ही एक समाधान रूपसे कह रहे हैं कि जो कोई भी कर्ता होगा वह अपने ही भावोंका कर्ता होगा। उसका कुछ भी निमित्त कारण हो फिर भी वह पदार्थ या निमित्त भूत पदार्थ किसी परके भावका कर्ता और भोक्ता नहीं हो सकता। कर्मके उदयके निमित्त सन्निधानमें जीवके विकारभाव हो गए लेकिन कर्म जीवके विभावका कर्ता नहीं कहलाये। वे निमित्त हुए। कर्ता तो वह कहलाता है जो स्वयं उस पर्याय रूपसे परिणमन जाता है। इसी प्रकार जीवके रागद्वेष भावोंका निमित्त पाकर कार्माण वर्गणायें कर्मरूप परिणम गई, पर इसके मायने यह नहीं हुआ कि जीव उन कार्माण वर्गणाओंका कर्ता भोक्ता हो जायगा। अब इस ही विषयमें दृष्टान्त दे रहे हैं।

भवति स यथा कुलालः कर्ता भोक्ता यथात्मभावस्य।
न तथा परभावस्य च कर्ता भोक्ता कदापि कलशस्य ॥५७७॥

परके कर्तृत्व व भोक्तृत्वके अभावका सोदाहरण कथन—जैसे कि कुम्हार अपने ही भावोंका कर्ता होता है वह पर भावोंका याने कलशका कर्ता या भोक्ता कभी नहीं हो सकता। कलशके बनानेमें वह कुम्हार केवल निमित्त कारण है। तो निमित्त मात्र होनेसे निमित्त भूत पदार्थ अन्यका कर्ता भोक्ता नहीं कहा जा सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिस समय कुम्हार अपने हाथका व्यापार कर रहा है उस तैयार मिट्टीके निकट तो उसके हस्त व्यापारका निमित्त पाकर उसके अनुकूल मिट्टीमें घटाकर रूप परिणमन हो जाता है। तो परिणम कौन रहा ऐसी निगाह करके देखें तो कर्तव्यपनका समाधान प्राप्त हो जाता है। परिणम रहा वह स्वयं मिट्टी द्रव्य तो कलशका कर्ता वास्तवमें मिट्टी है और कुम्हार अथवा दंड चक्र आदिक ये निमित्त मात्र हैं। अब उन निमित्तोंमेंसे उनकी विशेषता निरख करके यह भेद भले ही कर दिया जाय कि कोई उदासीके निमित्त हैं कोई प्रेरक। जैसे कुम्हार प्रेरक निमित्त है दंड चक्र उदासीन निमित्त है, लेकिन जब दोनों पदार्थोंके स्वरूप और उनकी पर्यायोंपर दृष्टि देते है तो सभी उदासीन निमित्त सिद्ध होते हैं। कुम्हारने हस्त व्यापार ही तो किया। उससे आगे उसका कोई अंश वहाँ नहीं गया, अतएव वह भी वहाँ उदासीन निमित्त है। तब यों वास्तवमें कुम्हार घटका कर्ता भोक्ता नहीं है किन्तु उसमें निमित्त नैमित्तिक कारण है, ऐसे ही कर्मोदयसे रागद्वेष हुए, रागद्वेषके निमित्तसे कर्म बन्ध हुए तो वहाँ भी वस्तुतः जीव कर्मोंका कर्ता नहीं है और कर्म जीवके विभावोंका कर्ता नहीं है।

तदभिज्ञानं च यथा भवति घटो मृत्तिका स्वभावेन ।
अपि मृण्मयो घटः स्यान्न स्यादिह घटः कुलालमय ॥५७८॥

परके कर्तृत्व व भोक्तृत्वके अभावका अयुक्तिक प्रतिपादन– कुम्हार घड़ेका कर्ता क्यों नहीं है इस विषयमें यह दृष्टान्त बिल्कुल स्पष्ट है कि घट तो मिट्टी के स्वभावरूपसे होता है याने मिट्टी स्वरूप ही घड़ा होता है। वह घड़ा कभी भी कुम्हारके स्वभाव वाला नहीं बन जाता याने घट मृत्तिका स्वरूप है, कुम्हार स्वरूप नहीं है। तो जब यों घटके अन्दर कुम्हारका एक भी गुण नहीं पाया जाता। कुम्हार का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, चेष्टा प्रभाव सब कुछ कुम्हारमें है और घड़ेका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव प्रभाव उस मिट्टीमें है तो अब यह बतलाओ कि कुम्हारने घडेका क्या किया ? कुछ भी नहीं किया। कुम्हार तो केवल घटकार्यमें निमित्त मात्र है। कुम्हारने इच्छा की, चेतन है इस लिए उसने अपने अधिकार पूर्ण दावा रखा, अपनी कलापर गर्व किया, इतने पर भी कुम्हारने मिट्टीमें कुछ नहीं किया। जो कुछ किया सो खुद ही में किया अब इससे जान गए होंगे कि जब घट भिन्न पदार्थ है, कुम्हार भिन्न पदार्थ है और फिर कहे कोई कि कुम्हार घटका कर्ता है तो यह तो नयाभास हुआ। नयकी कोई बात नहीं हुई। तो यों अतदगुण रोपको नयाभास कहते हैं। इस सम्बन्धमें यह दूसरा नयाभास बताया गया है।

अथ चेद्घटकर्तासौ घटकारो जनपदोक्ति लेशोयम् ।
दुर्वारो भवतु तदा कानो हानिर्यदा नयाभासः ॥५७९॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जनवादोक्तिका मिथ्यापन—यदि शङ्काकार यह कहे कि लोकमें यह व्यवहार तो होता है कि कुम्हार घड़ेका बनाने वाला है, तब इसमें कुछ बात तो मानना चाहिए, एकदम मिथ्या क्यों कहा जा रहा है ? इस शङ्काके समाधानमें आचार्य देव कहते हैं कि यदि ऐसा लोक व्यवहार होता है तो होने दो । उस लोक व्यवहारसे हमारे तत्त्वज्ञानमें कोई हानि नहीं है । होता है तो होने दो, किन्तु उस व्यवहारका नयाभास तो समझिये कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कतई कर्ता नहीं, और माना जा रहा है कि एक दम कर्तृत्वनयने किया, नयने बनाया मैं करूंगा, मैं कर रहा हूं, इस तरह कर्तृत्वके विकल्प ये अज्ञानी जन मचाये जा रहे हैं । यदि पर द्रव्य परका कर्ता है ऐसा लोक व्यवहार होता है तो होने दो वह उपचारसे मिथ्यारूपसे अथवा निमित्तका सम्बन्ध बनानेके लिए हो रहा है । वस्तुतः कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थ का कर्ता हो नहीं सकता । इस तरह दूसरे नयाभासके सम्बन्धमें यह स्पष्ट किया गया कि जिससे कुछ निकटता हो गयी हो ऐसे बहुत दूर रहने वाले पदार्थोंमें कर्तापनका व्यवहार करना नयाभास है । अब तीसरे नयाभासका स्वरूप कहते हैं ।

अपरे वहिरात्मानो मिथ्यावादं वदन्ति दुर्मतयः ।
यदबद्धेपि परस्मिन् कर्ता भोक्ता परोपि भवति यथा ॥५८०॥

अबद्ध पर पदार्थोंके कर्तृत्व भोक्तृत्व बतानेरूप तृतीय नयाभास—और, भी खोटी बुद्धि वाले पुरुष अनेक मिथ्या बातें करते हैं । तीसरे नयाभास विषयक ऐसी मति बनाते हैं कि जो पदार्थ इस ज्ञातासे सर्वथा दूर हैं याने जीवके साथ बंधा हुआ भी नहीं है उसका भी कर्ता माना है जीवको कि जीव ही तो कर्ता है, परन्तु यहाँ तो मकान आदिक पदार्थ जो बिल्कुल बंधे हुए भी नहीं हैं उनका कर्ता मानते हैं तो उन । यह अभिप्राय नयाभास है । शरीरको जीवका स्वामी मानना यह प्रथम नयाभास है । अपने आपमें अवगाहित हुए कर्म नो कर्मका कर्ता मानना यह दूसरा नयाभास है । अब तीसरे नयाभासकी बात कहते हैं । और, भी बहिरात्मत्व बुद्धि रखने वाले अज्ञानी पुरुष ऐसी मिथ्या बातें करते है ऐसे जो परपदार्थ सर्वथा दूर हो उसका भी यह जीव कर्ता है, भोक्ता है ऐसा कहा है । यह स्पष्ट मिथ्या होनेसे नयाभास स्पष्ट रूपसे सिद्ध होता है ।

सद्वेद्योदयभावान् गृहधन धान्यं कलत्रपुत्रांश्च ।
स्वयमिह करोति जीवो भुनक्ति वा स एव जीवश्च ॥५८१॥

उक्त तृतीय नयाभासकी मुद्रा—उक्त प्रसङ्गमें वास्तविकता यह है कि साता वेदनीय कर्मके उदयका निमित्त सन्निधान पाकर जो ये सब मिले हुए हैं घर,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धन धान्य स्त्री पुत्रादिकके शरीर पदार्थ अथवा निर्जीव पदार्थ सर्व वैभव सम्पदा आदिक इन सबका जीव ही स्वयं कर्ता है और वही जीव उनका भोक्ता है, यह बात पूर्ण मिथ्यावादसे भरी हुई है। ये सब साता वेदनीयके उदयका निमित्त पाकर स्वयमेव आ मिले हैं, जीव इनके अस्तित्वको नहीं रचता है। जीव तो केवल अपने भावों का परिणमन करता है जिस किसी भी प्रकार करले। तो जीवका वहाँ न स्वामित्व है न द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका कुछ प्रवेश है, फिर कैसे समझ लिया कि मैं इस घर धान्य आदिक सम्पत्तिका करने वाला हूं अथवा भोगने वाला हूं। इन बाह्य पदार्थोंके करने और भोगनेकी बात लगानेके लिए कुछ भी तो कहीं गुन्जाइस नहीं दिखती। अतः प्रकट दूर अबद्ध पदार्थका कर्ता भोक्ता मानना स्पष्ट नयाभास है। और ऐसा नयाभास ग्रहण करनेके योग्य नहीं है क्योंकि उनके ग्रहणसे आत्माका कुछ भी हित नहीं है।

ननुसति गृहवनितादौ भवति सुखं प्राणिनामिहाध्यक्षात् ।
असति च तत्र न तदिदं तत्तत्कर्ता स एव तद्भोक्ता ॥५८२॥

शंकाकार द्वारा अबद्ध पदार्थोंके कर्तृत्व व भोक्तृत्वका समर्थन—शङ्काकार कहता है कि तब यह बात प्रत्यक्ष देखी जा रही है कि जीवोंको घर स्त्री, पुत्रादिकके होनेपर सुख होता है और घर स्त्री आदिक पदार्थोंके अभावमें सुख नहीं होता तब तो यही श्रद्धा रखना चाहिये कि जीव ही उनका कर्ता है और जीव ही उन समस्त पदार्थोंका भोक्ता है। और विश्लेषणके साथ समझना है तो समझिये कि जीव अपनी सुख सामग्रीका ही करने वाला है और अपनी ही उस सुख सामग्रीको स्वयं भोगने वाला है। स्त्री पुत्रादिकके प्रसंगमें जीव केवल कल्पनायें करता है और केवल भावोंके अनुसार अपने उस सुख दुःखको प्राप्त करता है। तो यों ज्ञानानन्द शक्तिसे विपरीत परिणमन हो रहे हैं।

सत्यं वैषयिकमिदं परमिह तदपि न परत्र सापेक्षम् ।
सति बहिरर्थेऽपि यतः किल केषाञ्चिदसुखादि हेतुत्वात् ॥५८३॥

उक्त तृतीय नयाभासके मिथ्यापनका सयुक्तिक समाधान—शङ्काकार ने जो यह शङ्काकी थी कि घर स्त्री आदिकके होनेपर ही प्राणियोंको सुख होता है और उनके न होनेपर सुख नहीं होता और इसी लिए प्राणी घर स्त्री आदिकका कर्ता भी है भोक्ता भी है ऐसा आशय शङ्काकारका ठीक नहीं है। स्त्री घर आदिकके संयोगसे इन संसारी जीवोंको सुख नहीं होता। उनसे भी सुख नहीं होता परन्तु उनका यह सुख केवल विषयजन्य है। सो विषय जन्यमें भी यह समझना चाहिए कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उन विषयोंका लक्ष्य करके जीवने अपनी कल्पना करके आनन्द गुणका विकार पाया है। यह वैषयिक सुख वास्तविक सुख नहीं है। ये वैषयिक सुख भी जो उत्पन्न होते हैं सो अपने आनन्द गुणके विकार परिणमनसे हुए और ऐसा होनेमें किसी भी पर वस्तुका सहारा नहीं होता। यहाँ तो स्वतंत्ररूपसे इन मोही प्राणियोंने अपनी सुख पर्यायको प्रकट की। हाँ यह बात अवश्य है कि ऐसी विकृत सुख पर्यायकी निस्पत्ति उन विषयोंका विषय करके हुई है, सो विषय करनेका अर्थ है उनकी ओर उपयोग जाना। उपयोग परिणमन ही विषय है और ऐसी स्थितिमें जो वैषयिक सुख प्रकट हुए हैं सो भी उनसे ही हुए हैं और उनके न होनेपर हुए हैं सो बात नहीं है। बल्कि कभी कभी तो स्त्री पुत्र आदिक दुःखके कारण बन जाते है तो उनके होनेपर दुःख होना और उनके मिट जानेपर सुख हो जाना ऐसी भी घटनायें होती हैं, अतः यह कहना ठीक नहीं कि उनके होनेसे सुख होता। इस कारणसे यह उनका कर्ता भोक्ता है। जीव तो केवल अपने भावोंका कर्ता है स्त्री पुत्रादिकका कर्ता भोक्ता मानना नयाभास है।

इदमत्र तात्पर्यं भवतु स कर्ताथ वा च मा भवतु ।
भोक्ता स्वस्य परस्य च यथाकथञ्चिच्चिदात्मको जीवः ।।५८४

उक्त समाधानका सारांश यहां तात्पर्य यह है कि जीवके सम्बन्धमें जिस किसी भी प्रकार हो यह समझ लेना चाहिए कि वह चिदात्मक अर्थात् चैतन्य स्वरूप है जीव। यों जीव सदा अपने ही भावोंका कर्ता है और अपने ही भावोंका भोक्ता है, किसी भी परका कर्ता भोक्ता नहीं है, लेकिन ऐसा न मानकर शङ्काकारने अब जीव का ऐसा सुख दुःख रूप भाव होनेमें जो बाह्य विषय पडे हैं उन बाह्य विषयोंका नाम लेकर उपचारसे कह दिया जाता है कि ये वैभव सम्पदा जीवके सुखके कारण हैं। यहाँ तक नयाभासोंकी संख्या बताते बताते यह तीसरा नयाभास बता दिया। प्रथम तो है एक क्षेत्रावगाही भिन्न पदार्थमें कर्तापनकी बुद्धि द्वितीय नयाभास है जो जीवके साथ सम्बद्ध हो रहे हैं संयुक्त हो रहे हैं, पर एक क्षेत्रावगाही नहीं है, ऐसा परपदार्थों में कर्तृत्वकी बुद्धि बताना यह दूसरा नयाभास है और तीसरे नयाभासमें तो विषयभूत पदार्थ अत्यन्त भिन्न क्षेत्रमें पडे हुए समझे गए हैं, ऐसा अत्यन्त भिन्न पदार्थोंका कर्तृत्व और भोक्तृत्वका विकल्प करना सो यह है तृतीय नयाभास। साधककी दृष्टि यदि निर्मल है तो नयाभासोंके प्रकारोंसे भी शिक्षा ले सकते हैं। ये खोटे नय विकल्प हैं, यथार्थ नहीं है, ऐसा जानकर उन विकल्पोंसे दूर हटे।

अयमपि च नयाभासो भवति मिथो बोध्यबोध सम्बंधः ।
ज्ञानं ज्ञेयगतं वा ज्ञानगतं ज्ञेयमेतदेव यथा ।।५८५।।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बोध्यबोधक सम्बन्ध विषयक चतुर्थनयाभास—अब नयाभासोंके उदाहरण में यह चौथा नयाभास बनाया जा रहा है। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि ज्ञान और ज्ञेयका बोध्य बोध रूप सम्बन्ध है अर्थात् ज्ञेय तो बोध्य है और ज्ञान बोधक है। यों इस सम्बन्धके कारण ज्ञान तो ज्ञेयमें चला गया, सो ज्ञान ज्ञेयका धर्म है और ज्ञेय ज्ञानमें चला गया, इस प्रकारका जो लोग कथन करते हैं उनका यह कथन नयाभास है, ऐसा कथन क्यों नयाभास है कि ज्ञानका तो स्वभाव यह है कि उन प्रत्येक पदार्थों को जान तो रहा है किन्तु किसी भी पदार्थोंको जान तो रहा है किन्तु किसी भी पदार्थको जानता हुआ भी वह स्थिर है अपने ही स्वरूपमें। ज्ञान कभी भी ज्ञेय पदार्थमें जाते नहीं हैं और न यह ज्ञान उस पदार्थका धर्म बन जाता है। यद्यपि व्यवहारसे यह कहा जाता है कि यह घटका ज्ञान है यह पटका ज्ञान है, तो यह कथन इसलिए है कि उस समय उस ज्ञानकी कैसी प्रवृत्ति हुई है उसका बोध करना है तो उसका बोध विषयभूत पदार्थका नाम लिए बिना नहीं हो पाता था। अतएव उस ज्ञानमें विषय क्या आया ? ज्ञानमें विकल्प क्या हुआ ? जाना क्या गया ? ऐसी वस्तु का नाम लेकर कहा जाता है कि यह घटका ज्ञान है यह पटका ज्ञान है आदिक। तो यह व्यवहार भी तब ही है जब कि उस शब्दका सही मर्म जानना हो ! यदि घटका ज्ञान है, ऐसा सुनकर ऐसा ही मान लें कि यह तो ज्ञान घटका है, आत्माका नहीं है घटसे ही उत्पन्न हुआ, घटकी ही चीज है तो वह बात एकदम मिथ्या है। व्यवहार भी यथार्थतासे कब प्राप्त होता है ? जब व्यवहारके विषयभूत बात कुछ समझकर इस व्यवहारने समझाया किसको है। उस परमार्थकी जानकारी बनायें तो यह व्यवहार यथार्थ है, क्योंकि व्यवहारका प्रयोजन परमार्थका बोध करना है। तो इसी प्रकार इस बोध्य बोधक सम्बन्धको जानकर बोध्यकी शक्ति धर्मका भान करना और बोधक की शक्ति और धर्मका ज्ञान करना सो तो इसका यथार्थ बोध है और, व्यवहारके शब्दोंने सच्चे अर्थमें जितना बोला है उस ही कहनेके भावको यथार्थ मान लें तो वह व्यवहार असङ्कृत हो जाता है। ज्ञान ज्ञेयमें जाता है इसका अर्थ यह नहीं है कि ज्ञान अपने आधारभूत आत्म प्रदेशको छोड़कर वहाँ १००—१५० हाथ दूर या १ इंच भी दूर किसी ज्ञेय पदार्थमें चला गया हो यह बात नहीं है और न यह बात है कि ज्ञान आत्मामें भी बना रहे और फैल करके बाहर ज्ञेय पदार्थोंमें भी पहुँच जाय, किन्तु तथ्य यह है कि ज्ञान अपने स्वरूपसे चमकता हुआ, अपने आपमें विराजा हुआ वह सर्व कुछ समझ रहा है। वह समझ ज्ञेय विषयक है, इस कारण कहते हैं कि यह ज्ञान ज्ञेयमें चला गया है, इसी प्रकार ज्ञेय भी ज्ञानमें नहीं आता। लोग ऐसा कहने लगते हैं कि भगवानके ज्ञानमें सारा विश्व समा गया है। कहें ऐसा कोई हानि नहीं है, लेकिन उसका तथ्य तो जानें। यह सारा विश्व अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको छोड़ कर या अपने उस चतुष्टयको लेकर यहाँ भगवान आत्माके प्रदेशमें आया हो, ऐसा नहीं है, और ऐसा भी नहीं है कि प्रदेशमें तो नहीं आया, पर ज्ञानमें आ गया। अरे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूप, ज्ञान परिणमन प्रदेशसे बाहर नहीं है फिर भी यह कहना कि सारा विश्व भगवानके ज्ञानमें आया है, उसका अर्थ इतना ही है कि भगवानके ज्ञानका विषयभूत सारा विश्व है, अर्थात् समस्त विश्व विषयक बोध है। इस तथ्यको न मानकर और यों बताना कि ज्ञान तो ज्ञेयमें चला गया, ज्ञेय ज्ञानमें चला गया' इस कारण ज्ञान ज्ञेयका धर्म है या ज्ञेय ज्ञानका धर्म है यह सब नयाभास है, मिथ्या है।

चक्षु रूपं पश्यति रूपगतं तन्न चक्षुरेयव था।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति च ज्ञेयगतं वा न भवति तज्ज्ञानम् ॥५८६॥

दृष्टान्त पूर्वक बोध्य बोधक सम्बन्ध विषयक चतुर्थ नयाभासका निराकरण ज्ञान ज्ञेयगत है, ज्ञेय ज्ञानगत है ऐसा कथन नयाभास क्यों कहलाता है, इस सम्बन्धमें इस गाथामें स्पष्टीकरण किया गया है दृष्टान्त देकर क्या दृष्टान्त दिया है कि जैसे चक्षुरूपको देखते हैं परन्तु वे रूपमें तो नहीं चले जाते और न वे चक्षु रूपका धर्म बन जाते। स्पष्ट सब समझ रहे हैं कि आँख आँखकी ही जगह हैं और अपनी ही जगह रहकर ये आँखें इन समस्त रूपोंको देख रही हैं तो ये सारे दृष्टगत पदार्थ इस दृष्टिके विषयभूत हैं पर यह नहीं कि यह दृष्टि ये आँख उन बाह्य पदार्थों में पहुंच गए हों। इसी प्रकार ज्ञान अपनी ही जगह रहता हुआ सर्व ज्ञेयोंको जानता है, परन्तु वह ज्ञान अपनी ही जगह रहता हुआ सर्व ज्ञेयोंका धर्म न बन जायगा। यह दृष्टान्त एक व्यावहारीक दृष्टान्त है। वस्तुतः तो चक्षु भी बाह्य पदार्थोंको जानने देखते नहीं हैं। वे तो एक साधन हैं इस छद्मस्थ अवस्थामें इस साधनके द्वारा यह आत्मा जानता देखता है। पर जितने अंशके लिए यह दृष्टान्त दिया गया है उन अंशों में ही घटित करना है। सभी लोग देख रहे हैं कि आँख आँखकी जगह रहती हैं, बाहर नहीं जाती पर बाहरके इन पदार्थोंको देख लेती हैं। ठीक इसी प्रकार ज्ञानका विकास है। इससे यह समझना चाहिए कि ज्ञान ज्ञेयमें नहीं जाता ज्ञेय ज्ञानमें नहीं जाता, फिर भी ज्ञानको ज्ञेयगत और ज्ञेयको ज्ञानगत कहना नयाभास है। इसमें वस्तु का स्वरूप नहीं कहा गया है, किन्तु विपरीत कथन किया है।

इत्यादिकाश्च बहवः सन्ति यथालक्षणा नयाभासाः।
तेषामयमुद्देशो भवति विलक्ष्यो नयान्नयाभासः ॥५८७॥

अनेक नयाभासोंका निर्देश—नयाभासोंके उदाहरणमें चार उदाहरण दिए गए हैं। उन नयाभासोंके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके नयाभास हैं, जिनका कि ऐसा ही लक्षण है। अर्थात् जो अन्य वस्तुकी बात अन्य वस्तुमें आरोपित करे उसको नयाभास कहते हैं। अतद्गुणारोप नयाभास कहलाता है। वस्तुका वह धर्म नहीं, गुण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं। किसीसे सम्बन्ध नहीं, परिणमन नहीं, फिर भी किसी अन्य वस्तुके गुण धर्म को अन्य वस्तुमें कहना यह अतदगुणारोप कहलाता है। तो जितना भी अतद्गुणारोप का कथन है वह सब नयाभास है, व्यवहारनय नहीं है। व्यवहारनय भी तदगुणारोपा होता है। व्यवहार तो यों कहलाने लगता कि अभेद वस्तुमें भेदीकरण किया है और अभेद वस्तुमें अंशको बताया गया है, चाहे विकृत अंशोंको कहा जाय चाहे स्वाभाविक अंशोंको कहा जाय, चाहे भिन्न भिन्न शक्तियोंको कहा जाय वह सब व्यवहार है। तो व्यवहारमें तदगुणारोप है, अतदगुणका आरोप करना तो नयाभास ही कहलाता है। तो नय और नयाभास इनका स्वरूप एक दूसरेसे बिल्कुल विलक्षण है। जो समीचीन नय है उसे नय कहते हैं और जो मिथ्या नय है उसे नयाभास कहते हैं। तब शङ्काकारका यह कहना कि अन्य वस्तुके गुण अन्य वस्तुमें आरोपित किए जायें ऐसा व्यवहार बनानेमें जीवका अहित है, दोष है, तो भले ही दोष रहा आगे पर न्यायमें जो कुछ कथन करना आवश्यक होता है वह तो करना चाहिए। नय प्रवाह अनिवार्य है, तो उसका उत्तर यह है कि नय प्रवाह अनिवार्य है सो हम भी कह रहे अनिवार्य, पर उन नयोंके प्रकार यों बन जायेंगे कि कोई नय यथार्थ है और कोई नय मिथ्या है। तो यों कथन व्यवहारमें है आ पड़ता है ठीक है, किन्तु वह नयाभास है। नय नहीं है। इस तरह नयोंकी दो प्रकारता बताकर प्रवाहका दुर्निवार होना सिद्ध होता है। इससे यह जानना चाहिए कि जो अतदगुणारोप है वह नय नहीं है किन्तु नयाभास है।

卐

Version 1